कहानी पोस्टकार्ड की एवं अन्य आलेख.

गोवर्धन यादव

अनुक्रम.

कहानी पोस्टकार्ड की

डाक का महत्व प्राचीन काल से ही रहा है. उस समय एक राजा दूसरे राज्य के राजा तक अपना संदेश एक विशेष व्यक्ति जिसे **दूत** कहा जाता था, के माध्यम से भेजते थे. उन दूतों को राज्य की ओर से सुरक्षा तथा सम्मान प्रदान किया जाता था. महाकाव्य रामायण तथा महाभारत में कई प्रसंगों में संदेश भेजे जाने का उल्लेख प्राप्त होता है. राजा जनक ने अपनी पुत्री सीता और राम के विवाह होने का संदेश राम के पिता दशरथ को भिजवाया था. रावण की राजसभा में श्रीराम का सन्देश लेकर अंगद का जाना, इस बात का प्रमाण है.. महाभारत में श्रीकृष्ण का कौरवों के लिए पांच गांव मांगने जाना तथा अनेक राज्यों में पांडवों तथा कौरवों के पक्ष में, युद्ध में भाग लेने के लिए संदेश पहुँचाना, जैसी कोई डाक व्यवस्था उस समय काम कर रही होगी.

अन्य प्रसंगों में राजा नल द्वारा दमयन्ती के बीच सन्देशों का आदान-प्रदान हंस द्वारा होने का वर्णण आता है. महाकवि कालीदास के मेघदूत में **दक्ष** अपनी प्रेमिका के पास मेघों के माध्यम से सन्देश पहुँचाते थे. एक प्रेमी राजकुमार अपनी प्रेमिका को कबूतरों द्वारा पत्र पहुँचाते थे. खुदाई के दौरान कुछ ऐसी महत्वपूर्ण जानकारियां मिली हैं कि मिस्र, यूनान एवं चीन में डाक व्यवस्था थी. सिकन्दर महान ने भारत से यूनान तक संचार व्यवस्था बनाई थी, जिससे उसका संपर्क यूनान तक रहता था. अनेक राजा-महाराजा एक स्थान से दूसरे स्थान तक सन्देश पहुंचाने के लिए द्रुतगति से दौडने वाले घोडों का प्रयोग किया करते थे.

यह सब कालान्तर की बातें तो है ही, साथ ही रोचक भी है. इसका प्रयोग केवल उच्च वर्ग तक ही सीमित था. साधारण जन इससे कोसों दूर था. बाद मे कई प्रयास किए गए और डाक व्यवस्था में निरन्तर सुधार आता गया और आज यह व्यवस्था आम हो गई है.

१ अक्टूबर सन १८५४ को पहला भारतीय डाक टिकिट जारी किया गया था. उस समय तक पोस्टकार्ड की कल्पना भी नहीं की गई थी. सन १८६९ में आस्ट्रिया के डाक्टर इमानुएल हरमान ने पत्राचार के एक सस्ते साधन के रुप में पोस्टकार्ड की कल्पना की थी. भारत में पहली बार १ जुलाई १८७९ को पोस्टकार्ड जारी किए गये. जिसकी डिजाइन और छपाई का कार्य मेसर्स थामस डी.ला.रयू. एण्ड कंपनी लंदन ने किया था. उसके दो मूल्य वर्ग थे. एक पैसा(उस समय एक आने में चार पैसे हुआ करते थे) मुल्य का कार्ड अन्तरदेशीय प्रयोग के लिए था और देढ-आना वाला कार्ड ,उन देशों के लिए था जो "अंतरराष्ट्रीय डाक संघ" से संबद्ध थे.

पहले पोस्टकार्ड मध्यम हलके भूरे से रंग में छपे थे. एक पैसे वाले कार्ड पर " ईस्ट इण्डिया पोस्टकार्ड" छपा था. बीच में ग्रेट ब्रिटेन का राज चिन्ह मुद्रित था और ऊपर की तरफ़ दाएं कोने मे लाल-भूरे रंग में छपी ताज पहने साम्राज्ञी विक्टोरिया" की मुखाकृति थी. विदेशी पोस्टकार्ड में ऊपर अंग्रेजी और फ़्रैंच भाषाओं में" यूनिवर्सल पोस्टल यूनियन" अंकित था. इसके नीचे दो पंक्तियों में अंग्रेजी में क्रमशः "ब्रिटिश इण्डिया" और" पोस्टकार्ड" और इसका फ़्रैंच रुपान्तर तथा इन दोनों के बीच में ब्रिटेन का राजचिन्ह मुद्रित था एवं ऊपर दाहिने कोने पर टिकिट होता था. टिकिट और लेख नीले रंग में थे. दोनों ही प्रकार के कार्डो में अंग्रेजी में" दि एड्रेस ओनली टु बी रिटेन दिस साईड" छपा था.

पोस्टकार्ड में कई परिवर्तन हुए. १८९९ में “ईस्ट” शब्द हटा दिया गया और उसके स्थान पर “ इण्डिया पोस्ट कार्ड” मुद्रित होने लगा.

दिल्ली के सम्राट जार्ज पंचम के राज्याभिषेक की स्मृति में सन १९११ में केन्द्रीय और प्रान्तीय सरकारों ने सरकारी प्रयोग के लिए विशेष पोस्टकार्ड जारी किए थे. इन पर “ पोस्टकार्ड” शब्द मुद्रित था,परन्तु टिकिट का कोई चिन्ह अंकित नहीं था. इन पर “ताज” और “ जी.आर.आई” मोनोग्राम सुनहरे रंग में और दिल्ली तथा विभिन्न प्रांतों के बीच के प्रतीक-चिन्ह ,भिन्न-भिन्न रंगों से इम्बासिंग पद्धति से मुद्रित थे.

स्वतंत्रता के बाद चटकीले हरे रंग में “त्रिमूर्ति” की नयी डिजाइन के टिकिट वाला प्रथम पोस्टकार्ड ७ दिसम्बर १९४९ को जारी किया गया था. सन १९५० में कम डाक दर(६ पाई) के स्थानीय़ पोस्टकार्ड जारी किए गए, जिन पर कोणार्क के घोडॆ की प्रतिमा पर आधारित टिकिट की डिजाइन चाकलेट रंग में छपी थी. २ अक्टूबर १९५१ को तीन चित्र पोस्ट्कार्डों की एक श्रृंखला जारी की गई,जिसमें एक पर बच्चे को लिए हुए गांधीजी, दूसरे पर चर्खा चलाते हुए गांधीजी और तीसरे पर कस्तूरबा गांधी के साथ गांधीजी का चित्र अंकन था. २ अक्टूबर १९६९ को गांधी शताब्दी के उपलक्ष में तीन पोस्टकार्डों की दूसरी श्रृंखला निकाली गई, जिसमें गांधीजी और गांधीजी की मुखाकृति अंकित थी.

जबसे पोस्टकार्डों का प्रचलन हुआ है, तभी से जनता के पत्र-व्यवहार का माध्यम ये पोस्ट्कार्ड रहे हैं. हमारे देश के ग्रामीण क्षेत्रों में आज भी ये काफ़ी लोकप्रिय है. इस समय प्रतिवर्ष अरबों की संख्या में पोस्टकार्ड देश के एक छोर से दूसरे छोर तक, देशवासियों को भातृत्व के बंधन में बांधने का कार्य करते हैं.

....

2 डाकघर _ इतिहास के झरोखे से

आत्यानुधिक डाकघर भवन में जहां मरकरी लाइट की चकाचौंध आंखों को चुंधिया रही हो, जहाँ कम्युटर अपना कार्य पूरी दक्षता के साथ संपन्न कर रहें हों, जहां से सेटेलाइट मनीआर्डर भेजे जा रहे हों, जहां मशीनें चिट्ठियों की सार्टिंग बडी बारिकी से कर रही हों, ऐसे सुसज्जित भवन में,आज की सदी में पैदा हुए किसी नौजवान को ले जा कर खडा कर दिया जाए तो वह कौतुहल से उन्हें नहीं देखेगा,क्योकि वह आज वे सारी चिजों को अपने लैप्टाप में अथवा कम्प्युटर पर स्वयं देख-सुन रहा है,मोबाइल सेट उसकी अपनी जेब में है, वह बटन दबाते ही अपने किसी मित्र से रोज बात करता रहता है,उसे तनिक भी आश्चर्य नहीं होगा.और न ही वह यह जानना चाहेगा कि यह किस प्रकार काम करते है और इसके पीछॆ उसका अपना क्या इतिहास रहा होगा.

यदि कोई उससे कहे कि क्या वह यह जानता है कि आज से सैकडों वर्ष पूर्व ये सारी व्यवस्था नहीं थी,तब आदमी   अपना काम कैसे चलाता होगा? कैसे अपना संदेशा अपने सुदूर बैठे मित्र अथवा परिवार के सदस्यों को भेजते रहा होगा? तो निश्चित तौर पर वह यह जानना चाहेगा,कि अभावों के बीच भी उसके पूर्वज कैसे काम चलाते रहे होंगे. सबसे बडी कमी आज हमारे बीच में यही है कि हम न तो उसे अपने गौरवशाली इतिहास की जानकारी नहीं देते.जबकि हमारा यह उत्तरदायित्व बनता है कि हम अपनी विरासत, अपनी भावी पीढी

को देते चले. जब तक हमे उसके बारे में कुछ भी पता नहीं होगा,हम आखिर गौरव किस बात पर करेगें?

डाकघर का अपना गौरवशाली इतिहास रहा है. वह न सिर्फ़ हमें चमत्कृत करता है, बल्कि एक ऐसे भावालोक में भी ले जाता है, कि कठिन परिस्थितियों में हमारे पूर्वजों ने उसे इस स्थिति तक लाने में कितनी मेहनत की थी.

इतिहास को टटोलें तो हमें ज्ञात होता है कि राजघरानों में कभी कबूतर पाले जाते थे और उन्हें बाकायदा प्रशिक्षण भी दिया जाता था और सामने वाले की पहचान भी बतलानी होती थी कि पत्र प्राप्तकर्ता कैसा है ? इसके लिए उसे उसका छाया-चित्र दिखलाया जाता था और उसके पैरों में संदेशा/पत्र आदि बांध दिया जाता था और वह वहां जाकर उसी व्यक्ति को पत्र देता था,जिसकी पहचान उससे करवा दी गई थी. राजकुमार अकसर अपने प्रेम-संदेशे अपनी प्रेयसी को इसी के माध्यम से भिजवाते थे.

यह एक श्रमसाध्य कार्य था और इसमे कई बात धोका भी हो जाता था. उस समय भारतवर्ष में कै छोटे-बडे राज्य होते थे. राजा को कहीं पत्र भेजना होता था तो वह पत्र लिख कर उस पर राजमोहर चस्पा कर उसे घुडसवार के माध्यम से पहुंचता था. कई राजा- महाराजाओं ने एक निश्चित दूरी तय कर रखी थी. घुडसवार उस दूरी तक जाता और वहां तैनात दूसरे घुडसवार को वह पत्र सौंप देता था. इस तरह डाक लंबी दूरी तक पहुंचायी जाती थी. यह व्यवस्था केवल उच्च वर्ग तक ही सीमित थी. आमजन इस व्यवस्था को जुटा नहीं पाता था.

डाक व्यावस्था को सुचारु रुप से चलाने के लिए प्रयास चलते रहे. फ़िर डाक व्यवस्था हुई जो आमजन के लिए सुलभ थी. विश्व को अचंभित कर देने वाली मोर्स प्रणाली का आविष्कार हो चुका था. टेलीग्राफ़ लाइनें बिछाई जाने लगी थी. इस तरह संचार व्यवस्था में एक क्रांतिकारी परिवर्तन आया और आवश्यकतानुसार चीजें जुडती चली गयीं.

* सन 1825 में पहला टिकिट सिंध से कराची से जारी किया गया.
* सन 1830 में इंगलैण्ड और भारत के मध्य डाक संबंध स्थापित हुए.
* सन 1851में कलकत्ता एवं डायम्ण्ड हार्वर के बीच पहला सरकारी तार लाइन की व्यवस्था हुई.
* सन 1854 में पूरे भारत के लिए डाक टिकिट जारी की गई.
* सन 1865 की 27 तारीख को भारत और इंग्लैण्ड के बीच तार व्यवस्था स्थापित हुई.
* सन 1877 में व्ही.पी.प्रणाली जारी
* सन 1880 में मनीआर्डर व्यवस्था. जारी
* सन 1885 में रकम जमा करने" बचत बविंक" का शुभारंभ.

* 1907 में १५ नवम्बर को पहला इंटर्नेशनल रिप्लाई कूपन जारी किया गया.

* सन 1911 में इलाहाबाद से नैनी जंक्शन तक पत्र लेकर पहले विमान ने उडान भरी. यह वह समय था जब लोगों ने आकाश में उडता हुआ देखा था . पास से देखने एवं उडान भरते हुए नजदीक से देख पाने का सौभाग्य केवल उसी दिन मिला था. अतः नजदीक से देखने वालों की भीड का अंदाज आप स्वयं लगा सकते हैं बेहिसाब भीड

के बावजूद वहां गजब की शांति थी क्योंकि लोग आश्चर्य में डूबे हुए थे. एक डच विमान जिसका नाम बंबर-सोभंर था और जिसके चालक का नाम हेनरी पिके,जो फ़ांसीसी था, अपना विमान फ़ांस से लेकर आया था. इसके बाद अलग-अलग देशो में हवाई डाक सेवा प्रारंभ की. प्रथम उडान इटली के ब्रिंडस्ट नामक स्थान से अलबानिया के बेलोना नामक स्थान के मध्य हुई परन्तु नागरिक हवाई डाकसेवा को आरम्भ करने का गौरव आस्ट्रिया को प्राप्त हुआ. इस सेवा के अंतर्गत यह सुविधा सर्व प्रथम आस्ट्रिया के वियेना नगर तथा रूस के कोव नगर के मध्य प्रचलन में आयी.

* वायुयान से डाक लाने और ले जाने से पूर्व गैस से भरे गुब्बारों को प्रयोग में लाया गया. इस व्यवस्था अंजाम में लाने वाले व्यक्ति का नाम जान वाईस था,जिसने 35मील की उडान भरी थी. जानवाईस के सम्मान में अमरीका ने एक विशेष डाक सेवा प्रारंभ की एवं उस गुब्बारे का सार्वजनिक प्रदर्शन भी किया.

* 1917 मे सर्वप्रथम अधिकृत हवाई डाक टिकिट का प्रचलन आरम्भ हुआ.6 नवम्बर को पहला समाचार पत्र"केप-टाउन"जो केप्टाउन में छापा गया था. इसे पोर्ट- एलिजाबेथ: नामक हवाई जहाज से भेजा गया था.

* 1918 में यू.एस.ऎ ने हवाई टिकिट का प्रचलन आरम्भ हुआ. तथा टिकिटों पर हवाई जहाज के चित्र भी प्रकाशित किए गए.

* 1928 में "न्यूयार्क हेराल्ड ने अपने नियमित हवाई डाक संस्करण का प्राकाशन प्रारंभ किया था.

*1929 को भारत ने कामनवेल्थ हवाई डाक टिकिट जरी किए गए.

* 1930 को एक्सप्रेस डिलिवरी सर्विस जारी की गयी.
* 1932 में अमेरीका ने हवाई डाक लिफ़ाफ़े का प्रचलन शुरु किया.गया.
* 1946 में विश्व का पहला हवाई तार भेजा गया.

" डाक " क्रे इतिहास में एक नही वरन अनेक ऐसी रोचक जानकारियां हैं कि उन्हें अगर विस्तार दिया गया तो एक किताब ही लिखी जा सकती है. जिज्ञासु व्यक्ति को चाहिए कि वह इन दुर्लभ ऐतिहासिक जानकारी का संकलन करे एवं अन्य लोगों को भी प्रेरित करे,

युवा कवि-कहानीकार,लेखक, संपादक एवं कुशल प्रशासक डाक विभाग में कार्यरत आई.पी.एस. अधिकारी श्रीयुत कृषणकुमार यादव ने डाक विभाग के एक सौ पचास साल के गौरवशाली इतिहास को अपनी किताब" इन्डिया पोस्ट. 150 ग्लोरियस इअरस" में कडे परिश्रम से तैयार किया है, जो न सिर्फ़ रोचक है,बल्कि ज्ञानवर्धक भी है. आज भी कई ऐसे लोग हैं जो डाक-टिकिटों का तथा समय-समय पर प्रकाशित होने वाले" फ़ोल्डरों का तथा फ़र्स्ट डे कवर्स" का कलेक्शन करते हैं,उन्हें इस किताब को खरीदकर अपने संग्रह में रखते हुए उसे और भी बहुमूल्य बना सकते हैं.

3 मार्च 1847 कौ अमेरिका मे एलेक्जंडर ग्राहम बेल नाम के बालक ने जन्म लिया,.जिसके पिता का नाम एलेक्जेंडर मेल विले बेल और माता का नाम इलिजा ग्रेस था.. एलेक्जंडर बचपन से मेधावी, और विलक्षण प्रतिभा के धनी थे. इनकी मां बहरी थी. संयोग से जब इनकी शादी माबेल विले बेल से हुई तो वह भी बहरी ही थी. अपने मन की बात जब इनसे कहना होता तो उन्हें काफ़ी दिक्कतों का सामना करना पडता था. शायद यह वही कारण था कि वे आगे चलकर टेलीफ़ोन का आविष्कार कर पाए.

एडिनबर्ग युनिवर्सिटी और युनिवर्सिटी कालेज लंदन से अपनी पढाई पूरी कर वे बोस्टन युनिवर्सिटी मे आविष्कारक, वैज्ञानिक,इंजिनियर,प्रोफ़ेसर रहे. वे बधिरों के शिक्षक थे. बचपन से ही इन्हें ध्वनि विज्ञान में गहन रुचि थी. 23 साल की उम्र मे उन्होंने पहला प्यानो बनाया था. वे स्पीच टेक्नोलाजी विषय के शिक्षक रहे थे, अतः ऐसा यंत्र बनाने में सफ़ल हुए जो न केवल म्यूजिक्ल नोट्स भेजने में सक्षम था बल्कि आर्टिकुलेट स्पीच भी दे सकता था. यह टेलीफ़ोन का सबसे पुराना माड्ल था.

एलेक्जंडर ग्राहम बेल न सिर्फ़ टेलीफ़ोन के आविष्कारक थे बल्कि मेटल डिटेक्टर की खोज का श्रेय भी उन्हें ही जाता है.   बाद में वे डायबिटिक हो गए थे. २ अगस्त १९२२ के दिन उनका निधन हो गया.
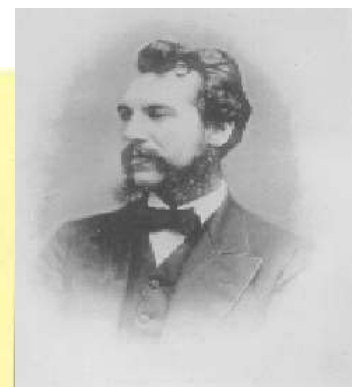
टेलीफ़ोन

के माडल जो समय और आवश्यकता के अनुसार बदलते रहे..(1से 8)   -------------------------------- ऊपर एलेक्झंडर ग्राहम बेल का चित्र.

सेमुअल एफ़.बी. मोर्स (27 अप्रैल 1791-2अप्रैल 1872   टेलीग्राफ़ सिस्टम के आविष्कारक
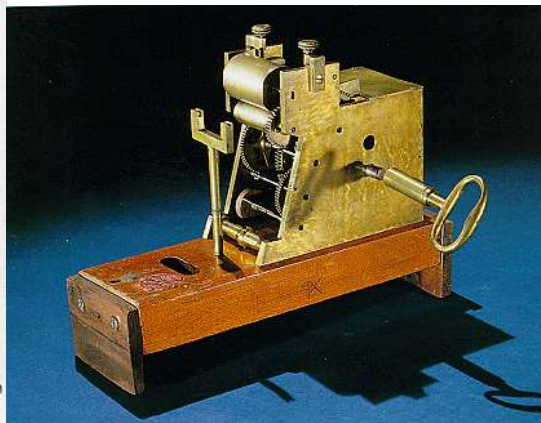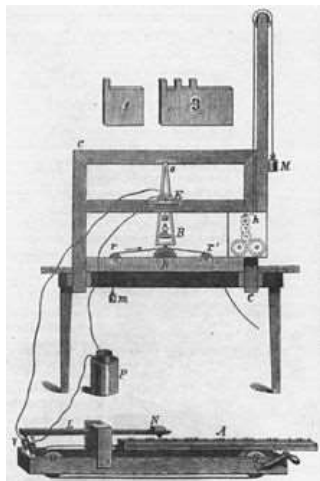
तार भेजने वाला यंत्र जो मोर्स के नाम से जाना गया.

सेमुअल फ़िनाले ब्रीज मोर्स का जन्म अमेरिका के चार्ल्स टाउन(मेसाचुसेट्स) को २ अप्रैल १७९१ में हुआ था, जिन्होने एकल-तार टेलीग्राफ़ी प्रणाली एवं मोर्स कोड का निर्माण किया था. वे भूगोल- वेत्ता और पादरी जेविडिया मोर्स की पहली संतान थे.

(o) भारतीय नाटक की उत्पत्ति व विकास(0)

इस बात के प्रमाणिक हैं हमारे वेद कि विश्व में सर्वप्रथम नाटक की उत्पत्ति तथा विकास भारत में ही हुआ था. ऋगवेद के कतिपय सूत्रों में यम और यमी, और पुरुरवा और उर्वशी आदि के कुछ संवाद हैं. विद्वान लोग इन संवादों को नाटक के विकास का चिन्ह पाते हैं. अनुमान किया जाता है कि इन्हीं संवादों से प्रेरणा ग्रहण कर नाटक की रचना की गई थी.

नाट्यकला दैवीय उत्पत्ति भी मानी जाती है. ऎसा कहा जाता है कि सतजुग के बीत जाने के बाद, त्रेतायुग के आरंभ में देवताओं ने मंत्रणा की और यह अनुभव किया कि सतजुग में सर्वत्र सुख की वर्षा होती रही लेकिन त्रेता में, दुख के संकट भी घिरने लगेंगे. अतः इससे निजाद पाने के लिए किसी ऎसे ग्रंथ की रचना की आवश्यकता महसूस की गई जिसका अनुशीलण करने से, आदमी राहत महसूस कर सके. सारे देवता ब्रह्मलोक गए और उन्होंने ब्रह्मदेव से प्रार्थना की कि कोई ऎसी कला प्रकट करें जिससे श्रवणशक्ति और आँखों की रोशनी बढे, मन आनन्दित हो. वह पाँचवा वेद हो, मगर उन चारों वेदों की तरह न हो. उससे लाभ पाने का हक, हर जाति, हर वर्ग, हर धर्म के लोगों को हासिल हो. ब्रहमाजी ने ऋग्वेद से संवाद, सामवेद से नगमा यानि संगीत,, यजुर्वेद से स्वांग(अभिनय) और अथर्ववेद से जज्बातनिगारी(रस) जैसे कलाओं के तत्वों को मिलाकर नाटक का प्रणयन किया. शिव ने ताण्डव(नृत्य) और पारवती ने लताफ़त(नरमी) की बुदतरी की, विश्वकर्मा को हुक्म दिया गया कि वह निगारखाने(नाट्यमंच) बनाए. फ़िर इसे भरत मुनि के हवाले किया गया ताकि वो जमीन पर आकर उडते रंग-रुप में पेश करें. इस् तरह भरतमुनि को इस खुदाई फ़न, अर्थात नाट्य-शास्त्र के रचियता होने का श्रेय हासिल हुआ.

अतः यह स्वतः सिद्ध हो जाता है कि इस कला का प्रादुर्भाव सबसे पहले भारत में हुआ. कुछ इतिहासकार, भरतमुनि के इस काल को ४०० ई.पू. के निकट मानते हैं. इस अद्भुत ग्रंथ में संगीत, नाटक, अभिनय के नियमों का आकलन भर नहीं है,बल्कि अभिनेता, रंगमंच और प्रेक्षक,इन तीन तत्वों की पूर्ति आदि तथ्यों का विवेचन किया गया है. ३७ अध्यायों में मुनि ने रंगमंच, अभिनेता, अभिनय, नृत्य गीत, वाद्य , रसनिस्पत्ति आदि का विवेचन किया था.

इस ग्रंथ की सर्वाधिक प्रामाणिक और विद्वत्तापूर्ण टीका, श्री अभिनव गुप्तजी ने सन १०१३ में किया था. जिसमे विषय वस्तु, पात्र, प्रेक्षागृह, रसवृत्ति, अभिनय, भाषा, नृत्य, गीत, वाद्ययंत्र,,पात्रों के परिधान, प्रयोग की जाने वाली धार्मिक क्रिया,,नाटक के अलग-अलग वर्ग, भाव, शैली, सूत्रधार, विदूषक, गणिका, नायिका आदि पात्रों में किस प्रकार की कुशलता अपेक्षित है-विचार किया गया है.

संस्कृत साहित्य में अनेक उच्चकोटि के नाटक लिखे गए

साहित्य में नाटक लिखने की परिपाटी संस्कृत से होते हुए हिन्दी में आयी. संस्कृत के अलावा पालि के ग्रंथों में भी नाटक लिखे जाने के प्रमाण मिले हैं. अग्निपुराण, शिल्परत्न, काव्यमीमांसा तथा संगीत -मार्तण्ड में राजप्रसाद के नाटकमंडपों के विवरण प्राप्त होते हैं. इसी तरह महाभारत मे रंगशाला के उल्लेख मिलते हैं. हरिवंशपुराण में रामायण के नाटक खेले जाने का वर्णण मिलता है. पाश्चयात विद्वानो की धारणा है कि धार्मिक कृत्यों से ही नाटकों का प्रादुर्भाव हुआ. इससे रंगस्थली की कल्पना की जा सकती है. दर्शकों के बैठने की उत्तम व्यवस्था थी.

संस्कृत नाटक रस प्रधान होते हैं. संस्कृतकाव्य परम्परा मे,नाटक काव्य का ही एक प्रकार है. इसमे दर्शक को अपनी आंखों से देखने और कानों से सुनने का भी रसास्वादन मिलता है. अतः इससे सहज जुडाव भी होता है. कहा गया है-"काव्येषु नाटकं रम्यम." इन नाटको में, लेखन से लेकर प्रस्तुतिकरण तक कई कलाएं,, भावों, अवस्थाओं से युक्त, क्रियायों के अभिनय, कर्म द्वारा संसार को सुख-शांति देने वाले होने के कारण नाट्य हमारे यहां विलक्षण कृति माने गए हैं. कहा गया है-"**न तज्ज्ञानं न तच्छिल्पं न सा विद्या न सा कला/नासौ योगो न तत्कर्म नाट्योऽस्मिन्यत्र न दृष्यते**"

संस्कृत नाटक के प्रमुख नाटककार कालिदास, भास, शुद्रक आदि की गणणा प्रमुख रुप से की जाती है.

<u>हिन्दी में नाटक-</u>

परिभाषा–"नाटक काव्य का ही एक रुप है,जो रचना श्रवण द्वारा ही नहीं अपितु, दृष्टि द्वारा भी दर्शक के हृदय में रसानुभूति कराती है. उसे नाटक या दृष्यकाव्य कहते है.

२.नाटक में श्रवण काव्य से अधिक रमणीयता होती है.
३.श्रवणकाव्य होने से लोकचेतना से अधिक घनिष्ठता होती है.
४.नाट्यशास्त्र में लोकचेतना को नाटक के लेखन और मंचन की मूल प्रेरणा माना गया है.
<u>नाटक के प्रमुख तत्व.-</u>

१.कथावस्तु–पौराणिक, ऐतिहासिक, काल्पनिक या सामाजिक हो सकती है.

२-पात्रों का सजीव और प्रभावशाली चरित्र, नाटक की जान होती है. कथावस्तु के अनुरुप नायक धीरोदात्त, धीर, ललित होना चाहिए.

३.रस-नाटक मे नवरसों में से केवल आठ का ही परिपाक होता है. इसमें शांत रस निषिद्द माना गया है. वीर रस या श्रृंगार-रस में से कोई एक नाटक का प्रधान रस होता है.

४. <u>अभिनय-</u> (१)आंगिक अभिनय (२) वाचिक अभिनय (३)आहार्य--वेषभूषा-मेकअप-स्टेज विन्यास,तथा भरपूर प्रकाश व्यवस्था होना आवश्यक होता है.

५)<u>सात्विक अभिनय---</u>पात्र जब डूबकर अपना अभिनय करता है तो वह नाटक में जान डाल देता है.

लोकनाट्य अथवा नाटक का लोकजीवन से घनिष्ट संबंध है. लोकनाट्य का मंचन उत्सवों, मांगलिक कार्यों अथवा विवाह आदि के अवसर पर किया जाता है. लोकनाट्य की भाषा अत्यन्त ही सरल, सीधी-सादी और रोचकता लिए हुए होती है. नटों के द्वारा भी लोकनाट्य रचे जाते हैं. नटों द्वारा खेले जाने वाले लोकनाट्यों में कथानक, ऐतिहासिक, पौराणिक अथवा सामाजिक आधार वाले होते है, अभिनीत किए जाते हैं .इसके लिए कोई विशेष मंच बनाने की आवश्यकता नहीं पडती. नट के आसपास ,कुछ दूरी बनाकर दर्शक बैठकर अथवा खडॆ रहकर, उसके द्वारा रचे जा रहे अभिनय को निहारते है,और आनन्दित होते है..

बंगाल का लोकनाट्य" जात्रा" के नाम से जाना जाता है. बंगाल के अलावा "जात्रा", उडिसा तथा पूर्वी बिहार में भी आयोजित किए जाते है. इसमे धार्मिक आख्यान होते हैं. राजस्थान में अमरसिंह राठौर की ऐतिहासिक गाथा का अभिनय किया जाता है. केरल में लोकनाट्य "यक्षगान" के नाम से जाना जाता है. उत्तरप्रदेश में रामलीला -रासलीला का मंचन किया जाता है. मध्यप्रदेश के मालवांचल में "मांच(मंच का अपभ्रंश), महाराष्ट्र में "तमाशा", गुजरात में "भवई",कर्नाटक में "यक्षगान", तमिलनाडु में" थेरुबुडु", बुंदेलखंड में" भंडैती", "रहस",कांडरा",स्वांग, गोवा का अनोखा नाट्य-"त्रियात्र", हरियाना का सांग, उत्तराखंड की केदार घाटी में-"चन्क्रव्यूह", हिमाचल की निचली तराई- बिलासपुर में स्वांग, मंडी में बांठना, सिरमौर और शिमला में करियाला,, चांबा में हरण, ऊना और सोलन मे-धाजा, बिहार में बिदेसिया, अवध में रामायण, छत्तीसगध में नाचा-तथा करमा, केरल में मूडीयेटटु आदि लोकनाटिका का मंचन किया जाता है. लोकनाट्य को लेकर राजस्थान के तीन क्षेत्र चिन्हित किए गए हैं (१)उदयपुर, डूंगीपूर, कोटा, झालावाड,सिरोही (२)जोधपुर, बीकानेर, शेखावट, जयपुर(३) राजस्थान का पूर्वांचल जिसमें शेखावट, जयपुर भरतपुर, धौलपुर प्रांत आते हैं.यहाँ नाटक कई रुपों में मंचित किए जाते हैं. कहने का तात्पर्य यह है कि संपूर्ण भारतवर्ष में नाटक मंचित किए जाने के प्रमाण मिलते हैं ,भले ही वे अलग-अलग नामों से जाने जाते हैं.

<u>पाश्चात्य रंगमंच-</u>

प्राचीन सभ्यता में चौथी शती ई.पूर्व यूनान और रोम के रंगमंच आकार ले चुके थे. इतिहास प्रसिद्ध डयोनीसन का थिएटर एथेंस में आज भी उस काल की याद दिलाता है. एक अन्य थिएटर है "एपोडारस "जिसका नृत्यमंचगोल आकार में है. ३६४ ई.पू. रोमवाले इट्रस्कन अभिनेताओं की मंडली अपने नगर लाए और उनके लिए "सर्कस कैक्सियस" में पहला रोमन रंगमंच तैयार किया. इस तरह रंगमंच प्रारंभिक रुप मे आया. सीजर तथा आगस्टस ने रोम को बहुत उन्नत किया. पांपेई का शानदार थिएटर तथा एक अन्य(पत्थर का) थिएटर उसी के बनवाए बताए जाते हैं.

<u>प्रथम चरण-</u>

१/-रोमीय परम्परावाल विसेंजा रंगमंच(१५८०-८५)जिसमें बाद में दीवार के पीछे वीथिकाएं जोडी गई .

२)सैवियोनेटा में स्कमोजी ने इन विथिकाओं को मुख्य रंगमंच से मिला दिया(१५८८ई)

३)इमिगो जोंस ने बाद में इन्हें रंगमंच ही बना दिया.

४)१६१८-१९ में परमा थिएटर में, रंगमंच पीछे हो गया और पृष्ठभूमि की चित्रित दीवार आगे आ गई.

लगभग दूसरी शती ईसवीं में रंगमंच कामदेव का स्थान माना जाने लगा. ईसाइयत के जन्म लेते ही पादरियों ने नाट्यशाला को हेय मान लिया. गिरजाघरों ने थिएटर का ऎसा गला घोटा कि वह आठ शताब्दियों तक पनप न सका.. उन्होंने रोमन साम्राज्य का पतन का मुख्य कारण थिएटर को ही माना. रोमन रंगमंच का अंतिम संदर्भ ५३३ ई. का मिलता है. बावजूद इसके चोरी-छिपे नाटक खेले जाते रहे. इतालवी पुनर्जागरण के साथ वर्तमान रंगमंच का जन्म हुआ. चौदहवीं शताब्दी में फ़िर से नाट्यकला का जन्म हुआ और लगभग १६वीं शताब्दी में उसे प्रौढता प्राप्त हुई. कई उतार-चढाव के बाद १८वीं-१९वीं शती में रंगमंच के विकास का आदर्श माना गया.

पुनर्जागरण का दौर सारे यूरोप में फ़ैलता हुआ एलिजाबेथ काल में इंग्लैंड जा पहुँचा. सन १५७४ तक वहां एक भी थिएटर नहीं था. लगभग पचास वर्षों में यह अपने चरम पर जा पहुंचा.और फ़िर इटली, फ़्रांस, स्पेन तक जा पहुंचा. १५९०-१६२० का काल शेक्सपियर का काल रहा. रंगमंच विशिष्ट वर्ग का न होकर, जनसामान्य के मनोरंजन का साधन बना.

आधुनिक रंगमंच

रंगमंच

रंगमंच यानि थिएटर,वह स्थान है,जहाँ नृत्य, नाटक, खेल आदि हों. रंगमंच शब्द रंग और मंच दो शब्दों की युति से बना शब्द है. रंग इसीलिए प्रयुक्त हुआ कि दृष्य को आकर्षक बनाने के लिए दीवारों, छ्तों और पर्दों पर विषेश प्रकार की और विविध प्रकार की चित्रकारी की जाती है और अभिनेताओं की वेषभूषा तथा सज्जा में भी विविध रंगों का प्रयोग होता है और मंच इसीलिए प्रयुक्त हुआ कि दर्शकों की सुविधा के लिए रंगमंच का तल फ़र्श से कुछ ऊँचा रहता है. दर्शकों के बैठने के स्थान को प्रेक्षागार और रंगमंच सहित समूचे भवन को प्रेक्षागृह, रंगशाला या नाट्यशाला कहते हैं. पश्चिमी देशों में इसे थिएटरया आअपेरा नाम दिया जाता है.

आधुनिक रंगमंच का वास्तविक विकास १९ वीं शती के उत्तरार्ध में आरंभ हुआ और एक भव्यतम रुप सामने आया.लेकिन यह स्वरुप ज्यादा दिन न टिक सका. विज्ञान के नए-नए अविष्कारों ने जन -जीवन पर व्यापक प्रभाव डाला. मूक सिनेमा, फ़िर सवाक सिनेमा ने जनमानस को अपनी ओर तेजी से आकृष्ट किया. थिएटर से कुछ मोह भंग हुआ और सिनेमा का आकर्षण बढता गया. क्योंकि इसमे ग्लैमर और पैसा दोनो है.

स्वतंत्रता पश्चात १९५१ में आयोजित एक कला सम्मेलन नई दिल्ली में, विचार किया गया कि नृत्य,नाटक और संगीत की राष्ट्रीय अकादमियाँ खोली जाए. ३१ मई १९५२ में तत्कालिन शिक्षा मंत्री श्री मौलाना अब्दुल्द कलाम आजाद की उपस्थिति में अकादमी की नीव रखी गई, २८ जनवरी १९५३ को डा.राजेन्दप्रसादजी ने इस अकादमी को विधिवत उद्घाटित किया.

भारतीय नाट्य परम्परा को नित नई उँचाइयाँ देने में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र,,जयशंकरप्रसाद,कमलेश्वर, जगदीशचन्द्र मथुर, सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, रामकुमार वर्मा, मोहन राकेश, स्वदेश दीपक, नाग बोडस, हरिकृष्ण प्रेमी ,धर्मवीर भारती, नंदकिशोर आचार्य, आदि विद्वानों ने बेहतरीन नाटकों की रचना की. उनके द्वारा लिखे गए नाटकों की सर्वत्र सराहना हुई और आज भी वे जगह-जगह मंचित किए जा रहे हैं.

कई दिग्गज फ़िल्म -अभिनेता तो आज अपने चर्मोत्कर्ष पर हैं, सबके सब स्टेज कलाकर रह चुके हैं.कुछ तो सिनेमा में इतने व्यस्त हो गए हैं कि इन्हें स्टेज(रंगमंच) पर जाने का समय ही नहीं मिल पाता, बावजूद इसके उनके मन में अब भी रंगमंच को लेकर अगाथ श्रद्धा और समर्पण का भाव मौजूद है.

नाटकों की बात हो और नुक्कड नाटक पर बात न की जाए तो शायद अधुरा सा लगेगा. समय के साथ नुक्कड नाटक भी कलाकारों द्वारा खेले गए. इसमे किसी थिएटर अथवा किसी नाट्यगृह की आवश्यक्ता नहीं पडती. कलाकार जिसमे पात्रों की संख्या कम से कम "एक" या आवश्यकतानुसार कुछ ज्यादा भी हो सकती है, द्वारा गली-गली में जाकर अपने अभिनय से दर्शकों तक अपनी बात पहुंचाते है, जिसे हम नुक्कड भी कह सकते हैं, वे अपनी प्रस्तुति द्वारा समाज में फ़ैल रही विसंगतियों पर कडी चोट करते हैं अथवा कोई ऎसा संदेश देना चाहते हैं जो समाज के लिए उपयोगी हो,के विषय के मूल में जाकर छिपे संदेश को जन-जन तक पहुँचाते है. इसमे कोई तामझाम नहीं करनी पडती और न ही कोई विशाल मंच बनाने की जरुरत ही पडती है. इससे यह फ़ायदा हुआ कि जो लोग नाटकों से जुड नहीं पाए अथवा समयाभाव के कारण मंच तक नहीं भी जा पाए तो उन्हें घर बैठे इसका आनन्द उठाने को मिल जाता है. अतः कहा जा सकता है कि नाट्यविधा का भविष्य आगे भी सुरक्षित रहेगा और आए दिन नए-नए नाटक मंचित किए जाते रहेंगे.

....

4

नृत्य, जब महारास में बदल जाये.

प्रत्येक पर्व एवं त्योहार हमारी जीवन-यात्रा के लिए कुछ न कुछ प्रकृति प्रेम का संदेश लेकर आता है..भारत में मेलों और उत्सवों का उदय भी इसी का क्रमबद्ध रुप था और ये मेले और उत्सव प्रकृति की गोद में ,नदी के किनारे या खेती से प्राप्त लाभ की उमंग के रुप में उदय हुए और सामूहिक रुप से इकठ्ठे होकर, मनोरंजन के साधन तथा सामाजिक मेल-मिलाप के माध्यम भी बने.

त्योहारों की श्रृखंला में एक ऎसा ही मनभावन त्योहार है दीपावली. इस त्योहार को पूरे देश मे बडी ही श्रृद्धा एवं उल्ल्हास के साथ मनाया जाता है .दीपावली से दो दिन पूर्व से ही धनतेरस, नरक चौदस, दीपावली,अन्नकूट एवं गोवर्धन पूजन मनाए जाने की परंपरा है. दीपावली पूजन के ठीक दूसरे ही दिन अहीरों की टोली अपनी पारम्परिक वेषभूषा में नृत्य करते देखे जा सकते है .ढोलक की थाप पर एवं बांसुरी की तान पर, आप इन्हें मस्ती में नाचते-गाते देखते हैं. यह सब क्यों होता है, और क्यों किया जा रहा है,,इसे जानने के लिए हमें थोडा इतिहास में जाना होगा.

कार्तिक मास के शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा को अन्नकूट महोत्सव मनाया जाता है. इस दिन गोवर्धन की पूजा कर अन्नकूट उत्सव मनाया जाता है. इससे भगवान विष्णु की प्रसन्नता प्राप्त होती है.

" कार्तिकस्य सिते पक्षे अन्नकूटं समाचरेत !
गोवर्धनोत्सवं चैव श्रीविष्णुः प्रीयतामिति.!!

इस दिन प्रातःकाल घर के द्वार देश में गौ के गोबर का गोवर्धन बनाकर तथा उसे शिखरयुक्त बनाकर वृक्ष-शाखादि से संयुक्त और पुष्पों से सजाया जाता है..इसके बाद गन्ध पुष्पादि से गोवर्धन भगवान का विधिपूर्वक पूजन किया जाता है.तथा यथा सामर्थ्य भोग लगाया जाता है. मन्दिरों में विविध प्रकार के पकवान, मिठाइयां नमकीन और अनेक प्रकार की सब्जियाँ, मेवे फ़ल आदि भगवान के समक्ष सजाए जाते हैं तथा अन्नकूट का भॊग लगाकर आरती होती है फ़िर भक्तों में प्रसाद वितरण किया जाता है .काशी, मथुरा,वृंदावन,गोकुल,बरसाना, नाथद्वारा आदि भारत के प्रमुख मन्दिरों में लड्डुओं तथा पकवानों के पहाड(कूट) बनाए जाते है,

द्वापर में वृज में अन्नकूट के दिन इन्द्र की पूजा होती थी. श्रीकृष्णजी ने गोप-ग्वालों को समझाया कि गाएं और गोवर्धन प्रत्यक्ष देवता हैं. अतः इनकी पूजा होनी चाहिये,क्यौंकि इन्द्र तो यहाँ कभी दिखायी नहीं देते और न ही आप लोगों के द्वारा बनाये गये पकवान ही ग्रहण करते है. भगवान की प्रेरणा से वृजवासियों ने गोवर्धन पर्वत का पूजन किया और स्वयं गोवर्धन का रुप धारणकर पकवानों को ग्रहण किया.

जब इन्द्र को इस बात का पता चला तो वे अत्यन्त ही क्रोधित हुए और प्रलयकाल के सदृश मुसलाधार वृष्टि कराने लगे. यह देख श्रीकृष्णजी ने गोवर्धन पर्वत को अपनी अँगुली पर धारण किया ,उसके नीचे सब वृजवासी,ग्वालबाल, गायें-बछडे आदि आ गये. लगातार सात दिन तक वर्षा होती रही ,लेकिन वे कुछ नहीं बिगाड पाये. इन्द्र को इससे बडी ग्लानि हुई. तब ब्रह्माजी ने इन्द्र को श्रीकृष्ण के परब्रम्ह परमात्मा होने की बात बतलायी, तो लज्जित हो इन्द्र ने वृज आकर क्षमा मांगी.वृजवासियों ने मिलकर मांगलिक गीत गाये और जमकर नृत्य किया. अहीरों के नृत्य करने के पीछे यह भी एक कारण हो सकता है.

श्रीकृष्णजी का जन्म ऎसे समय में हुआ था,जब धरती कंस के अत्याचार से कांप रही थी. जन्म के साथ ही एक-एक असुरों कॊ मारना,वन में गौवें चराने जाना,दधी-माखन के बेचे जाने का विरोध कर, मटकियों का फ़ोडना, माखन चुराकर खाना ,ग्वालबालाओं के साथ नृत्य करना ,कालियादह से कालिया नाग को वहाँ से मार भगाना आदि-आदि घटनाओं पर यदि हम विचार करें तो भगवान श्रीकृष्णजी की पर्यावरण के प्रति सजगता एवं उनके रक्षण एवं संवर्धन की दृष्टि को समझा जा सकता है. आज विकास के नाम पर प्रकृति का विनाश होते हुए हम देख रहे हैं और भयावह परेशानियों के दौर से गुजर भी रहे हैं. अगर हमारा यह क्रम जारी रहा तो दुर्दिन आने में वक्त नहीं लगेगा. अहीरों के नृत्य के पीछे, इस प्रकृति- प्रेम की भावना को समझा जाना चाहिए.

श्रीकृष्ण व्यावहारिक दार्शनिक थे. जन्म की पहली रात से जीवन की अंतिम घडी तक, वे पूर्ण परिपक्व बने रहे. विशेषताओं के रत्नाकर, श्रीकृष्ण के जीवन के, जिस भी पक्ष को हम छुएं,वह मणि संघर्ष की तरह चमकदार ही दिखता है. आज का समय संघर्ष का युग **है** को सामान्य रुप से विपरीत काल, प्रतिकूल स्थितियां ,परेशानियों तथा, संकट का दूसरा रुप माना जा सकता है. श्रीकृष्ण ने संघर्ष को इनसे निकालकर, एक ऎसी जीवन शैली का रुप दिया, जो वर्तमान के लिए सबक का विषय है.

बचपन में लीलाओ का वैचित्र्य, जवानी में द्वारकाधीश का पराक्रम, प्रौढावस्था में योगेश्वर का चिन्तन तथा वृद्धावस्था में श्रीकृष्ण के विवादास्पद निर्णय,अधिक नए-नए विचार देने वाले रहे. इस अद्भुत समाधानकारी व्यक्तित्व को, सदैव प्रश्नों के घेरे मे खडा किया गया .दो सवाल आज भी हमें उलझनॊं मे डालने के लिए पर्याप्त है कि उन्होने बचपन में महारास और बाद की आयु मे महाभारत क्यों कराया ?.क्या कभी आपने इस विषय पर गंभीरता से विचार किया है ? मेरा अपनी अल्पबुद्धि के अनुसार मेरा अपना मत है कि बचपन में बालकॊं का हृदय

स्वच्छ-साफ़ और सरल होता है. यदि वे मिलकर नृत्य करते है तो उसमे कृत्रिमता कहीं नहीं होती,.क्योकि वे जो कुछ भी सोचते और करते हैं उसमें हृदय प्रमुख होता है. उसमे बुध्धि का कहीं भी योगदान नहीं रहता. अतः उनके द्वारा किया गया हर कार्य, भले ही वह नृत्य ही क्यों न हो, उसमे बनावटीपन नहीं होता .उनके नृत्य में वे कोमल भाव सदैव उपस्थित रहते है. यहाँ बुद्धि का प्रयोग नहीं के बराबर है .बच्चा जब जवान होने लगता है तो उसकी बाल- सुलभ हरकतों मे अन्तर आने लगता है. वह हर कार्य दिल से न करते हुए बुध्धि से करने लगता है और उसमे कृत्रिमता आने लगती है .फ़िर बाललीलाओं में मधुरता का चरम जो होता है. अतः श्रीकृष्णजी ने बचपन में महारास लीलाएं कीं. उनके नाचने के साथ केवल बृज ही नही नाचा बल्कि विश्व भी उनके साथ नृत्य करने लगा था. युवावस्था में प्रवेश करते ही बुद्धि अपना काम करने लगती है. उसमें इतनी समझ विकसित हो जाती है कि वह अच्छे और बुरे मे फ़र्क महसुस करने लगता है. पाप क्या है और पुण्य क्या है ,इसे समझने लगता है .कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि उसकी बुद्धि, निर्णय करने की क्षमता विकसित हो चुकी होती है..उन्होने देखा कि कौरव, पाण्डवों के साथ सही न्याय नहीं कर रहे हैं ,तब उन्होंने इसका फ़ैसला युद्ध के जरिये करने का विकल्प खोज निकाला. ऎसा भी नहीं था कि पूरी प्रजा को उन्होने युद्ध मे झोंक दिया. युद्ध से पहले वे स्वयं शांतिदूत बनकर गये और सभी पहलुओं पर विस्तार से अपनी बात रखी. मैं समझता हूँ कि बढती उम्र मे नृत्य नहीं, बल्कि महाभारत ही हो सकता है .यह बात हमें ध्यान मे रखना होगा. इसी महाभारत. के नेतृत्व के कारण हम उन्हें एक विशिष्ट स्थान पर खडा पाते है. मित्रों,बात स्पष्ट है कि जब नृत्य अपने चरम पर जा पहुँचता है तो वह महारास मे तब्दील हो जाता है. आज की तिथि में हमें नृत्य को उस चरम तक पहुँचाना है, जो महारास मे बदल जाए. केवल हम ही नहीं नाचें, बल्कि हमारे साथ समूचा विश्व नाचने लगे और नाचने लगे जड-चेतन भी. इस बात पर भी हमें गंभीरता से सोचना होगा.

जमुना के तट पर बैठ कर बासुंरी बजाना, गाय चरना, भोली-भाली गोपियों के साथ नाचना ,बडे-बडे सुरमाओं को धूल चटाते कृष्ण को समझ पाना यदि कठिन नहीं है, तो सरल भी नहीं है. आज अपने आपको श्रीकृष्ण के वंशज होने का दावा करने वाले सभी यदुवंशियों को इस बात पर गहनता से अध्ययन करना होगा, कि क्या वे उस दिव्यता का एक अंश भी अपने जीवन में उतार पाने में कहाँ तक सफ़ल हो पाए हैं ? हम थोडा यहाँ उन्हें समझते चलें. <u>ग्यानक्रांति</u> के उदघोषक के रुप में वे गीताकार हैं. उनके <u>ग्यान</u> की इस प्रखर और प्रबल धारा का लोहा सारा संसार मानता है. नैतिकक्रांति ,भावनात्मक नवनिर्माण के लिए वे भक्तिरस के संचारक हैं. उनकी भक्तवत्सल, लोकहित के लिए समर्पित भाव को कोई नकार नहीं सकता. सामाजिक क्रान्ति-नायक के रुप में, वे वृज में गोरस सत्याग्रह से लेकर, महाभारत तक का संचालन किया. इन सबके पीछे उनके दुष्प्रवृत्ति-उन्मूलन और सत्प्रवृत्ति-संवर्धन का ,युगधर्म की स्थापना का, सुदृढ संकल्प कार्य करता दिखाई देता है. सामाजिक कार्यक्रमों के रुप में उन्होंने अनेक अभियान चलाए ,उन्हें यहाँ आज समझने की ज्यादा जरुरत है.

श्रीकृष्णजी के अग्रज बलराम हलधर कहलाए तथा वे स्वयं गोपाल कहलाए. इस संबोद्धन के पीछे उनकी विशेष मंशा झलकती है. भारत कृषिप्रधान देश है. यहाँ की उपजाऊ भुमि में अन्न,फ़ल से लेकर औषधियों,वनस्पतियों की अटूट संपदा उपजती है इसी संपदा को विकसित कराने की साधना का नाम कृषि और उक्त साधना मे निष्ठापूर्वक लगे रहने वाले साधक का नाम कृषक.है. कृषक याने हलधर. गोपाल के बगैर हलधर और हलधर के बगैर गोपाल की कल्पना कैसे की जा सकती है ?आज स्थूल पर्यावरण एवं सूक्ष्म मानवीय संवेदना, दोनो के संरक्षण एवं विकास के लिए गोपालवृत्ति आवश्यक हो गयी है. हम आज गोपाल के गूढ अर्थ को भूल गये है तथा पहले दूध व्यापार और फ़िर मांस व्यापार से सम्पन्न बनने के क्रूर प्रयास करने लगे. इस भ्रम में हम पशुधन के प्रति तो क्रूर बने ही, पर्यावरण और मानवीय संवेदनों के हनन में भी हमें संकोच नहीं रह गया है.

गोरस आंदोलन:-भगवान श्रीकृष्ण ने धन के लोभ मे गोरस बेचे जाने के विरुद्ध, वृज में सबसे पहले सत्याग्रह छेडा था. धन के लोभ में बछ्डों और बालकों को गोरस से वंचित करके उसे राक्षसों को उपलब्ध कराने का कडा विरोध किया था. **मटकी फ़ोड** उसी आन्दोलन का एक अंग था. गॊपूजन जैसी भावभरी परिपाटियाँ उन्होनें चलायीं थीं. आज की परिस्थितियों में, हमें उसी तथ्य को समझना तथा समझाना होगा .फिर आज देश में, ऊर्जा की बडी समस्या है. पशुधन से प्राप्त गोबर से उपयोगी बायोगैस तथा कीमती खाद का भली- भांति उपयोग में लेने का क्रम बना लिया जाय, तो उससे पर्यावरण बिगडने के स्थान पर, पर्यावरण-संवर्धन का लाभ उठाया जा सकता है. गोबर, गोमूत्र में खरपतवार को जैव खाद मे बदलने की अद्‍भुत क्षमता होती है. वह अपने से १० गुने खरपतवार को उपयोगी उर्वरक के रुप मे बदल सकता है. गाय के दूध, दही ,घृत से लेकर गोबर, गोमूत्र, चर्म और हड्डियों तक में औषधीय गुण पाये जाते है. यदि हम इनका महत्व समझ लें तो देश के पर्यावरण, आर्थिक-स्वावलम्बन, आरोग्य,कृषि विकास तथा मानवीय संवेदनाओं के संरक्षण-संवर्धन की दिशा में महत्वपूर्ण उपलब्धियाँ प्राप्त कर सकते हैं.

हमने आपने दीपावली के समय टी.वी पर देखा है कि करोडों मन खोया ,जो नकली दूध से बनाया गया था,अधिकारियों ने जमीन मे दफ़्न किया और हजारों लीटर नकली दूध, नालियों में बहाया गया. कभी सोचा है आपने कि हम केवल धन कमाने की लालच मे कितना आगे बढ गये है कि हमे अपने ही देशवाशियों की जान की परवाह नही है.? पशुधन की स्थिति भी आज किसी से छिपी नहीं है. आज सबसे ज्यादा जबाबदारी उस समाज की है जो अपने आपको गोपालक- अथवा अहीर कहलाने पर गर्व महसूस करता है.और गर्व महसूस करता है कि वह श्रीकृष्ण का वंशज है, एक श्वेत कान्ति लाने मे उसे आगे आना होगा.

अपने मन की पीडा मैं यहाँ उजागर करना चाहूँगा कि वर्तमान समय में जो नर्तक दल अपनी पारम्परिक वेषभूषा मे गली-गली घूमता है,वह मुझे प्रीतिकर नहीं लगता.लोगों के मन में अब वह सम्मान नहीं रह गया है जो पहले कभी देखने को मिलता था .अतः स्थानीय समिति को चाहिए कि वह नृत्यमंडलियों के बीच स्पर्धा का आयोजन करवाये और पुरस्कार में उन्हें नगद राशि के अलावा भेंट मे सुखसागर-गीता या अन्य ग्रंथ जो श्रीकृष्ण की लीलाओं को विस्तार से बतलाता हो, दिया जाना चाहिए.

इस दिशा में हमने एक प्रयोग यहाँ छिन्दवाडा में किया. छ्ट के दिन मढई मेले मे जिले के आसपास की नृत्य मंडलियों को आमंत्रित किया. उनके बीच स्पर्धा करवाई गई और उन्हें पुरस्कृत किया. हालांकि ऎसे आयोजन पूर्व में भी होते रहे है.लेकिन इस साल हमने इस जिले के प्रख्यात जनलोकप्रिय सांसद एवं शहरी विकास मंत्री माननीय श्री कमलनाथजी को आमंत्रित किया. उन्होने इस मढई मेले में, सिर्फ़ शिरकत ही नहीं की बल्कि अहीरों के पारम्परिक पोषाक को भी पहना और घोषणा की कि आने वाले समय में इसे और भी भव्य रुप मे मनाने और शरीक होने का आश्वासन भी दिया. श्रीकृष्ण मंदिर निर्माण में वे काफ़ी समय पूर्व, पाँच लाख की राशि भी प्रदत्त कर चुके हैं. एक विशाल मंदिर की आधारशिला रखी जा चुकी है जिसके निर्माण में वे अपना पूरा सहयोग देने के लिए भी तत्पर है ,इसकी उन्होने घोषणा वे कर चुके हैं.

भगवत गीता का घर- घर में पाठ हो,लोगों में नैतिकता का प्रकाश फ़ैले, लोग सदाचारी बनें,और श्रीकृष्ण के अनुयायी बनें ,इस विचार धारा को जन-जन तक पहुँचाने के लिए यहाँ गीता प्रतिष्टान्न नामक संस्था का गठन किया गया. श्रीयुत केशवप्रसाद तिवारी,पूर्व जिला एवं सत्र न्यायाधीश ने इस पुनीत कार्य के लिए अध्यक्ष का पदभार ग्रहण किया और विगत पाँच साल से यह संस्था नियमित रुप से प्रति रविवार ,दिन के नौ बजे से गीता पाठ करवाती है. इसमें बडी संख्या में लोग इकठ्ठे होते हैं और अपने जीवन कॊ धन्य बनाते हैं. जल्दी ही यहाँ गीता मन्दिर का निर्माण भी होने जा रहा है. श्री काबराजी ने मन्दिर निर्माण में भूमि दान में दी है .इसी तरह अन्य जिलों तथा गाँवो में इसका विस्तार किया जाना, मैं आवश्यक समझता हूँ.

मंदिर तो बनते रहेगे ,लेकिन हमे अपने मन में एक ऎसे मन्दिर को भी आकार देना होगा, जिसमें हमारे जगदीश्वर आकर विराजें. जब मन में ईश्वर का वास हो जाता है,तो भय दूर भाग खडा होता है. अतः हम ऎसा कार्य नहीं करे जिससे हम खुद ही अपनी नजरों में गिर जाएं .देर सबेर कृष्ण आप में उतरेगे, लेकिन इसके लिए हमारे मंदिर का हर कोना पवित्र एवं सुवासित होना जरूरी है .वह हमे दिखाई भी पडेगें, बशर्ते हमारी दृष्टि, उस अर्जुन की तरह होनी चाहिए. यह दृष्टि अर्जुन को तब मिली थी जब उसने उन पर भरोसा किया. जिस दिन हमें उन पर इतना भरोसा हो जाएगा, सच मानिए हमें यह कहने की जरुरत ही नहीं पडेगी कि**"बडी देर भई नन्दलाला".** तब नंदलाल हमारे साथ होगे, हर पल, हर संकट में.

३३३..

5 ईश्वरीय सत्ता का सानिद्दय प्राप्त् करने के लिए भगवद्गीता.

गीता अध्ययन करने की अनेक दृष्टियां हैं. सरल मन के व्यक्ति के सामने ईश्वरीय सत्ता किस प्रकार अपने आपको उदघाटित कर रही है.-गीता को समझने के लिए एक दृष्टि यह भी है-भगवान श्रीकृष्ण गीता के उपदेश के माध्यम से अर्जुन के सामने, अपने आपको धीरे-धीरे अनावृत कर रहे हैं. श्रीकृष्ण कहते हैं-अर्जुन ! जो ज्ञान आज मैं तुम्हें दे रहा हूँ, वही ज्ञान सृष्टि के प्रारंभ में मैंने सूर्य को दिया था. अर्जुन को आश्चर्य होता है- वह कहता है-" हे भगवन ! यह कैसे संभव है ?.आप अत्यन्त ही अर्वाचीन हैं,जबकि सूर्य बहुत ही प्राचीण. तो श्रीकृष्ण कहते हैं-" अर्जुन, मेरी सत्ता सनातन है. मैं हर समय रहता हूँ. तुम भी हर समय रहे हो ,परन्तु तुमको उसका स्मरण नहीं है और मुझे सब याद है. वे कहते हैं-मैं ही प्रकाश हूँ और मैं ही अन्धकार. ज्ञान भी मैं ही हूँ और अज्ञान भी. मैं ही संपूर्ण सृष्टि का अध्यक्ष, रचयिता और नियंता हूँ. मुझसे परे कुछ भी नहीं है. श्रीकृष्ण में अर्जुन का विश्वास दृढतर होता जाता है और वह निवेदन करता है कि प्रभु, मैं आपको विराटता और विभूतियों के साथ देखना चाहता हूँ. श्रीकृष्ण कहते हैं- मेरे शरीर में संपूर्ण चराचर जगत को देखो. दिव्य आभूषणों और गंधों से युक्त अनेक नेत्रों और मुखों वाले मुझ सीमा रहित को देखो. अर्जुन को कुछ भी दिखलाई नहीं पडता. तब श्रीकृष्ण कहते हैं- "इन सामान्य नेत्रों से तुम मेरी विराटता देख नहीं सकते. इसके लिए मैं तुम्हें दिव्य प्रदान करता हूँ." सचमुच्-ईश्वरीय सत्ता, ईश्वरीय विराटता को भौतिक नेत्रों से नहीं, ज्ञान के नेत्रों से ही देखा जा सकता है. अर्जुन के सामने अपना विराट स्वरुप प्रकट कर देने के बाद श्रीकृष्ण का अपने को उदघाटित करने का प्रयोजन पूर्ण हो जाता है.

श्रीकृष्ण का विराट रुप देख लेने के बाद अर्जुन के मन में श्रीकृष्ण के प्रति स्वाभाविक भक्ति जागृत होती है. अब वह वस्तुतः श्रीकृष्ण से निकटता प्राप्त करना चाहता है,परन्तु परमसत्ता की निकटता प्राप्त करने के लिए कुछ प्रयत्न अपनी ओर से करना पडता है. ईश्वर का प्रिय बनने ले लिए हमें अपने व्यक्तित्व में कुछ विशेषताएं धारण करनी पडती है. गीता के बारहवें अध्याय में श्लोक 13 से 20 तक उन मानवीय गुणॊं का वर्णण है,जो व्यक्ति को ईश्वरीय सत्ता का प्रेमपात्र बना देते हैं. द्वेषभावनाहीन, मैत्रीपूर्ण, दयालु,आसक्तिरहित,अहंकारविहीन,सुख-दुख में सम, पक्षपात रहित, मान-सम्मान-अपमान में सम, निंदास्तुति मे सम तथा स्थिर बुद्धि का होना आदि ऐसे गुण हैं,जिन्हें धारण करने वाला व्यक्ति श्रीकृष्ण को प्रिय है. जो व्यक्तिध हर्ष, शोक, ईर्ष्या, भय और उद्वेग से मुक्त है,वही परमात्मा की निकटता प्राप्त कर सकता है. जो व्यक्ति अन्दर-बाहर से पवित्र् है, अपने कार्य में प्रवीण है,कोई भी जीव जिससे

व्यथित नहीं होता और न ही वह कभी किसी जीव से व्यथित होता है, ऐसा व्यक्ति श्रीकृष्ण का प्रेमपात्र बनता है. स्पष्टतः ये महान मानवीय गुण है. श्रीकृष्ण ने इन गुणो, की सूची में किसी से द्वेष न करने को पहला स्थान दिय है.

अद्वेष्टा सर्वभूतानाम- अगर आप किसी से द्वेष करते हैं तो पहला नुकसान आप स्वयं अपने आप का करते हैं. आप बैठे-ठाले अपने मनोवैज्ञानिक उर्जा का क्षरण कराते हैं. मन की शांति नष्ट करते हैं तथा अपने स्वास्थ्य को खराब करते हैं. बरहवें अध्याय के बीसवें शोक में श्रीकृष्ण कहते हैं कि जो व्यक्ति निष्काम -प्रेमभाव से अनुचिन्तन करेगा, वह मुझे अतिशय प्रिय् होगा.

अतः श्रेष्ठ गुणों पर ध्यान एवं दृष्टि रखने से वे गुण व्यक्ति को प्राप्त हो जाते हैं. श्रेष्ठ लोगों के साथ रहने से आदमी की श्रेष्ठता की ओर बढता है. अच्छा साहित्य व्यक्ति को अच्छा बनने की प्रेरणा प्रदान करते हैं. अतः श्रेष्ठ गुणों का चिंतन, श्रेष्ठ व्यक्तियों का संग और श्रेष्ठ साहित्य को ही पढना चाहिए.

....

पातालकोट-धरती पर एक अजूबा

गगनचुंबी इमारतें, सड़कों पर फ़र्राटे भरती रंग-बिरंगी-चमचमाती लक्जरी कारें, मोटरगाडियां और न जाने कितने ही कल-कारखाने, पलक झपकते ही आसमान में उड़ जाने वाले वायुयान, समुद्र की गहराइयों में तैरतीं पनडुब्बियाँ, बड़े -बड़े स्टीमर,- जहाज आदि को देख कर आपके मन में तनिक भी कौतुहल नहीं होता. होना भी नहीं चाहिए,क्योंकि आप उन्हें रोज देख रहे होते हैं, उनमे सफ़र कर रहे होते हैं. यदि आपसे यह कहा जाय कि इस धरती ने नीचे भी यदि कोई मानव बस्ती है, जहाँ के आदिवासीजन हजारों-हजार साल से अपनी आदिम संस्कृति और रीति-रिवाज को लेकर जी रह रहे हों, जहाँ चारों ओर बीहड़ जंगल हों, जहाँ आवागमन के कोई साधन न हो, जहाँ विषैले जीव जन्तु, हिंसक पशु खुले रुप में विचरण कर रहे हों, जहाँ दोपहर होने पर ही सूरज की किरणें अन्दर झांक पाती हो, जहाँ हमेशा धुंध सी छाई रहती हो, चरती भैंसों को देखने पर ऐसा प्रतीत है,जैसे कोई काला सा धब्बा चलता-फ़िरता दिखलाई देता हो, सच मानिए ऐसी जगह पर मानव-बस्ती का होना एक गहरा आश्चर्य पैदा करता है.

जी हाँ, भारत का हृदय कहलाने वाले मध्यप्रदेश के छिन्दवाड़ा जिले से 62 किमी. तथा तामिया विकास खंड से महज 23 किमी.की दूरी पर स्थित "पातालकोट" को देखकर ऊपर लिखी सारी बातें देखी जा सकती है. समुद्र् सतह से 3250 फ़ीट ऊँचाई पर तथा भूतल से 1200 से 1500 फ़ीट गराई में यह कोट यानि "**पातालकोट**" स्थित है.

हमारे पुरा आख्यानों में “पातालकोट” का जिक्र बार-बार आया है. ”पाताल” कहते ही हमारे मानस-पटल पर ,एक दृष्य तेजी से उभरता है. लंका नरेश रावण का एक भाई, जिसे अहिरावण के नाम से जाना जाता था, के बारे में पढ़ चुके हैं कि वह पाताल में रहता था. राम-रावण युद्ध के समय उसने राम और लक्ष्मण को सोता हुआ उठाकर पाताललोक ले गया था, और उनकी बलि चढ़ाना चाहता था, ताकि युद्ध हमेशा-हमेशा के लिए समाप्त हो जाए. इस बात का पता जैसे ही वीर हनुमान को लगता है वे पाताललोक जा पहुँचते हैं. दोनों के बीच भयंकर युद्ध होता है, और अहिरावण मारा जाता है. उसके मारे जाने पर हनुमान उन्हें पुनः युद्धभूमि पर ले आते हैं.

पाताल अर्थात अनन्त गहराई वाला स्थान. वैसे तो हमारे धरती के नीचे सात तलों की कल्पना की गई है- **अतल, वितल, सतल, रसातल, तलातल, महातल,तथा महातल के नीचे पाताल..** शब्दकोष में कोट के भी कई अर्थ मिलते हैं= जैसे-**दुर्ग, गढ, प्राचीर, रंगमहल और अंग्रेजी ढंग का एक लिबास जिसे हम कोट** कहते है. यहाँ कोट का अर्थ है- चट्टानी दीवारें. दीवारे भी इतनी ऊँचीं कि आदमी का दर्प चूर-चूर हो जाए. कोट का एक अर्थ होता है- कनात. यदि आप पहाड़ी की तलहटी में खड़े हैं,तो लगता है जैसे कनातों से घिर गए हैं. कनात की मुंडॆर पर उगे पॆड़-पौधे, हवा मे हिचकोले खाती डालियाँ,ड हाथ हिला-हिला कर कहती हैं कि हम कितने ऊपर है. यह कनात कहीं-कहीं एक हजार दो सौ फ़ीट, कहीं एक हजार सात सौ पचास फ़ीट, तो कहीं खाइयों के अंतःस्थल से तीन हजार सात सौ फ़ीट ऊँची है. उत्तर-पूर्व में बहती नदी की ओर यह कनाट नीची होती चली जाती है. कभी-कभी तो यह गाय के खुर की आकृति में दिखाई देती है.

पातालकोट का अंतःक्षेत्र शिखरों और वादियों से आवृत है. पातालकोट में, प्रकृति के इन उपादानों ने इसे अद्वितीय बना दिया है. दक्षिण में पर्वतीय शिखर इतने ऊँचे होते चले गए हैं कि इनकी ऊँचाई उत्तर-पश्चिम में फ़ैलकर इसकी सीमा बन जाती है. दूसरी ओर घाटियाँ इतनी नीची होती चली गई है कि उसमें झांककर देखना मुश्किल होता है. यहाँ का अद्भुत नजारा देखकर ऐसा प्रतीत होता है मानो शिखरों और वादियों के बीच होड़ सी लग गई हो. कौन कितने डगौरव के साथ ऊँचा हो जाता है और कौन कितनी विनम्रता के साथ झुकता चला जाता है. इस बात के साक्षी हैं यहाँ पर ऊगे पेड़-पौधे,जो तलहटियों के गर्भ से, शिखरों की फ़ुनगियों तक बिना किसी भेदभाव के फ़ैले हुए हैं.

पातालकोट की झुकी हुई चट्टानों से निरन्तर पानी का रिसाव होता रहता है. यह पानी रिसता हुआ ऊँचें-ऊँचे आम के वृक्षॊं के माथे पर टपकता है और फ़िर छितरते हुए बूंदों के रुप में खोह के आँगन में गिरता रहता है. बारहमासी बरसात में भींगकर तन और मन पुलकित हो उठते है.

अपने इष्ट, देवों के देव महादेव, इनके आराध्य देव हैं. इनके अलावा और भी कई देव हैं जैसे-मढुआदेव, हरदुललाला, पनघर, ग्रामदेवी, खेडापति, भैंसासर, चंडीमाई, खेड़ामाई, घुरलापाट, भीमसेनी, जोगनी, बाघदेवी, मेठोदेवी आदि को पूजते हुए अपनी आस्था की लौ जलाए रहते हैं, वहीं अपनी आदिम संस्कृति, परम्पराओं ,रीति-रिवाजों, तीज-त्योहारों मे गहरी आस्था लिए शान से अपना जीवन यापन करते हैं. ऐसा नहीं है कि यहां अभाव नहीं है. अभाव ही अभाव है, लेकिन वे अपना रोना लेकर किसी के पास नहीं जाते और न ही किसी से शिकवा-शिकायत ही करते हैं. बित्ते भर पेट के गढ्ढे को भरने के लिए वनोपज ही इनका मुख्य आधार होता है. पारंपरिक खेती कर ये कोदो- कुटकी, बाजरा उगा लेते हैं. महुआ इनका प्रिय भोजन है. महुआ के सीजन में ये उसे बीनकर सुखाकर रख लेते हैं और इसकी बनी रोटी बड़े चाव से खाते हैं. महुआ से बनी शराब इन्हें जंगल में टिके रहने का जज्बा बनाए रखती है. यदि बिमार पड़ गए तो तो भुमका-पड़िहार ही इनका डाक्टर होता है. यदि कोई बाहरी बाधा है तो गंडा-ताबीज बांध कर इलाज हो जाता है. शहरी चकाचौंध से कोसों दूर आज भी वे सादगी के साथ जीवन यापन करते हैं. कमर के इर्द-गिर्द कपड़ा लपेटे, सिर पर फ़ड़िया बांधे, हाथ में कुल्हाड़ी अथवा दराती लिए. होठॊं पर मंद-मंद मुस्कान ओढ़े ये आज भी देखे जा सकते हैं. विकास के नाम पर करोड़ों-अरबॊं का खर्चा किया गया, वह रकम कहाँ से आकर. कहाँ चली जाती है, इन्हें पता नहीं चलता और न ही ये किसी के पास शिकायत-शिकवा लेकर जाते हैं. विकास के नाम पर केवल कोट में उतरने के लिए सीढ़ियां बना दी गयी है, लेकिन आज भी ये इसका उपयोग न करते हुए अपने बने -बनाए रास्तों-पगडंडियों पर चलते नजर आते हैं. सीढ़ियों पर चलते हुए आप थोड़ी दूर ही जा पाएंगे, लेकिन ये अपने तरीके से चलते हुए सैकड़ों फ़ीट नीचे उतर जाते हैं. हाट-

बाजार के दिन ही ये ऊपर आते हैं और इकठ्ठा किया गया वनोपज बेचकर, मिट्टी का तेल तथा नमक आदि लेना नहीं भूलते. यही उनकी न्यूनतम आवश्यकता है.

एक खोज के अनुसार पातालकोट की तलहटी में करीब 20 गाँव साँस लेते थे, लेकिन प्राकृतिक प्रकोप के चलते वर्तमान समय में अब केवल 12 गाँव ही शेष बचे हैं. एक गाँव में 4-5 अथवा सात-आठ से ज्यादा घर नहीं होते. जिन बारह गाँव में ये रहते हैं, उनके नाम इस प्रकार है- रातेड़, चमटीपुर, गुंजाडोंगरी, सहरा, पचगोल, हरकिछार, सूखाभांड, घुरनीमालनी, झिरनपलानी, गैलडुब्बा, घटलिंग, गुढ़िछातरी तथा घाना. सभी गांव के नाम संस्कृति से जुड़े-बसे हैं. भारियाओं के शब्दकोष में इनके अर्थ धरातलीय संरचना, सामाजिक प्रतिष्ठा, उत्पादन विशिष्टता इत्यादि को अपनी संपूर्णता में समेटे हुए है.

ये आदिवासीजन अपने रहने के लिए मिट्टी तथा घास-फ़ूस की झोपड़ियाँ बनाते है. दिवारों पर खड़िया तथा गेरू से प्रतीक चिन्ह उकेरे जाते हैं. हँसिया-कुल्हाड़ी तथा लाठी इनके पारंपरिक औजार है. ये मिट्टी के बर्तनों का ही उपयोग करते हैं. ये अपनी धरती को माँ का दर्जा देते हैं. अतः उसके सीने में हल नहीं चलाते. बीजों को छेड़ककर ही फ़सल उगाई जाती है. वनोपज ही उनके जीवन का मुख्य आधार होता है.

पातालकोय़ में उतरने के और चढ़ने के लिए कई रास्ते हैं. रातेड़-चिमटीपुर और कारेआम के रास्ते ठीक हैं. रातेड़ का मार्ग सबसे सरलतम मार्ग है, जहाँ आसानी से पहुँचा जा सकता है. फ़िर भी संभलकर चलना होता है. जरा-सी भी लापरवाही किसी बड़ी दुर्घटना को आमंत्रित कर सकती है.

पातालकोट के दर्शनीय स्थलों में रातेड़, कारेआम, चिमटीपुर, दूधी तथा गायनी नदी का उद्‌गम स्थल और राजाखोह प्रमुख है. आम के झुरमुट, पर्यटकों का मन मोह लेती है. आम के झुरमुट में शोर मचाता- कलकल के स्वर निनादित कर बहता सुन्दर सा झरना, कारेआम का खास आकर्षण है. रातेड़ के ऊपरी हिस्से से कारेआम को देखने पर यह ऊँट की कूबड़ सा दिखाई देता है. राजाखोह पातालकोट का सबसे आकर्षक और दर्शनीय स्थल है. विशाल कटॊरे मे मानिंद, एक विशाल चट्टान के नीचे 100 फ़ीट लंबी तथा 25 फ़ीट चौडी कोट (गुफ़ा) में कम से कम दो सौ लोग आराम से बैठ सकते हैं. विशाल कोटरनुमा चट्टान, बड़े-बड़े गगनचुंबी आम-बरगद के पेड़ों, जंगली लताओं तथा जड़ी-बूटियों से यह ढंकी हुई है. कल-कल के स्वर निनादित कर बहते झरनें, गायनी नदी का बहता निर्मल शीतल जल, पक्षियों की चहचाहट, हर्रा-बेहड़ा-आँवला, आचार-ककई एवं छायादार तथा फ़लदार वृक्षों की सघनता, धुंध और हरतिमा के बीच धूप-छाँव की आँख मिचौनी, राजाखोह की सुंदरता में चार चाँद लगा देता है. और उसे एक पर्यटन स्थल विशेष का दर्जा दिलाता हैं. नागपुर के राजा रघुजी ने अँगरेजों की दमनकारी नीतियों से तंग आकर मोर्चा खोल दिया था, लेकिन विपरीत परिस्थितियाँ देखकर उन्होंने इस गुफ़ा को अपनी शरण-स्थली बनाया था, तभी से इस खोह का नाम "राजाखोह" पडा. राजाखोह के समीप गायनी नदी अपने पूरे वेग के साथ चट्टानों कॊ काटती हुई बहती है. नदी के शीतल तथा निर्मल जल में स्नान कर व तैरकर सैलानी अपनी थकान भूल जाते हैं.

पातालकोट का जलप्रवाह उत्तर से पूर्व की ओर चलता है. पातालकोट की जीवन-रेखा दूधी नदी है, जो रातेड़ नामक गाँच के दक्षिणी पहाड़ों से निकलकर घाटी में बहती हुई उत्तर दिशा की ओर प्रवाहित होती हुई पुनः पूर्व की

ओर मुड़ जाती है. तहसील की सीमा से सटकर कुछ दूर तक बहने के बाद ,पुनः उत्तर की ओर बहने लगती है और अंत में नरसिंहपुर जिले में नर्मदा नदी में मिल जाती है.

पातालकोट का आदिम- सौंदर्य जो भी एक बार देख लेता है, वह उसे जीवन पर्यंत नहीं भूल सकता. पातालकोट में रहने वाली जनजाति की मानवीय धड़कनों का अपना एक अद्भुत संसार है, जो उनकी आदिम परंपराओं, संस्कृति, रीति-रिवाज, खान-पान, नृत्य-संगीत, सामान्यजनों के क्रियाकलापों से मेल नहीं खाते. आज भी वे उसी निश्छलता, सरलता तथा सादगी में जी रहे हैं.

यहाँ प्राकृतिक दृष्यों की भरमार है. यहाँ की मिट्टी में एक जादुई खुशबू है, पेड़-पौधों के अपने निराले अंदाज है, नदी-नालों में निर्बाध उमंग है, पशु-पक्षियों मे निर्द्वंद्वता है. खेत- खलिहानों मे श्रम का संगीत है, चारो तरफ़ सुगंध ही सुगंध है, ऐसे मनभावन वातावरण में दुःख भला कहाँ सालता है?. कठिन से कठिन परिस्थितियाँ भी यहाँ आकर नतमस्तक हो जाती है

सूरज के प्रकाश में नहाता-....पुनर्नवा होता- खिलखिलाता.....-मुस्कुराता- खुशी से झूमता-... हवा के संग हिचकोले खाता-.... जंगली जानवरों की गर्जना में कांपता-.... कभी अनमना, तो कभी झूमकर नाचता जंगल, खूबसूरत पेड-पौधे, रंग-बिरंगे फ़ूलों से लदी-फ़दी डालियाँ, शीतलता और मंद हास बिखेरते, कलकल के गीत सुनाते, आकर्षित झरने, नदी का किसी रुपसी की तरह इठलाकर-.... बल खाकर.... मचलकर चलना देखकर भला कौन मोहित नहीं होगा ?. जैसे -जैसे सांझ गहराने लगती है और अन्धकार अपने पैर फ़ैलाने लगता है, तब अन्धकार में डूबे वृक्ष किसी दैत्य की तरह नजर आने लगते है और वह अपने जंगलीपन पर उतर आते हैं. हिंसक पशु-पक्षी अपनी-अपनी मांद से निकल पड़ते हैं, अपने शिकार की तलाश में. सूरज की रौशनी में, कभी नीले तो कभी काले कलूटे दिखने वाले, अनोखी छटा बिखेरते पहाडों की श्रृंखला, किसी विशालकाय राक्षस से कम दिखलाई नहीं पड़ते. खूबसूरत जंगल जो अब से ठीक पहले, हमे अपने सम्मोहन में समेट रहा होता था, अब डरावना दिखलायी देने लगता है. एक अज्ञातभय, मन के किसी कोने में आकर सिमट जाता है. इस बदलते परिवेश में पर्यटक, वहाँ रात गुजारने की बजाय ,अपनी-अपनी होटलों में आकर दुबकने लगता है, जबकि जंगल में रहने वाली जनजाति के लोग, बेखौफ़ अपनी झोपड़ियों में रात काटते हैं. वे अपने जंगल का, जंगली जानवरों का साथ छॊड़कर नहीं भागते. जंगल से बाहर निकलने की वह सपने में भी सोच नहीं बना पाते. "**जीना यहाँ-मरना** यहाँ" की तर्ज पर ये जनजातियां बड़े सुकून के साथ अलमस्त होकर अपने जंगल से खूबसूरत रिश्ते की डोर से बंधे रहते हैं.

अपनी माटी के प्रति अनन्य लगाव और उनके अटूट प्रेम को देखकर एक सूक्ति याद हो आती है." **जननी-जन्मभूमिश्च स्वर्गादपिगरियसी**"= जननी और जन्म भूमि स्वर्ग से भी महान होती है" को फ़लितार्थ और चरितार्थ होते हुए यहाँ देखा जा सकता है. यदि इस अर्थ की गहराइयों तक अगर कोई पहुँच पाया है, तो वह यहाँ का वह आदिवासी है, जिसे हम केवल जंगली कहकर इतिश्री कर लेते है. लेकिन सच माने में वह " **धरतीपुत्र** " है, जो आज भी उपेक्षित है.

....

(परिभाषा)

प्रतीक का अर्थ है" चिन्ह" किसी मूर्त के द्वारा अमूर्त की पहचान. यह अभिव्यक्ति का बहुत सशक्त माध्यम है. अमूर्त का मूर्तन अर्थात जो वस्तु हमारे सामने नहीं है, उसका प्रत्यक्षीकरण प्रतीकों के माध्यम से होता है. मनुष्य अपने सूक्ष्म चिंतन को अभिव्यक्त करते समय इन प्रतीकों का सहारा लेता है. इस तरह ""मनुष्य का समस्त जीवन प्रतीकों से परिपूर्ण है.

(२)अथवा-किसी वस्तु, चित्र, लिखित शब्द, ध्वनि या विशिष्ठ चिन्ह को प्रतीक कहते हैं, जो संबंध सादृष्य या परम्परा द्वारा किसी अन्य वस्तु का प्रतिनिधित्व करता है. उदाहरण- एक लाल कोण, अष्टकोण (औकटागौन), रुकिए(स्टाप) का प्रतीक हो सकता है. सभी भाषाओं में प्रतीक होते है, व्यक्तिनाम, व्यक्तियों का प्रतिनिधित्व करने वाले प्रतीक होते हैं.

प्रयोगवाद के अनन्त समर्थक अज्ञेय ने अपने चिंतन से कविता को नयी दिशा दी. उन्होंने परम्परागत प्रतीकों के प्रयोग पर करारा प्रहार करते हुए शब्दों मे नया अर्थ भरने की बात की. उनकी वैचारिकता से बाद के अशिकांश कवियो ने दिशा ली.और कविताओं में नए रंग भरने लगे. (इससे पूर्व महादेवी वर्मा ने अपनी कविता में "दीपक" को प्रतीक बनाया और एक नए चिंतन, नए आयाम, नए क्षितिज रचे थे.

प्रयोगवाद के के अनन्य समर्थक अज्ञेय की एक छोटी से कविता की बानगी देखिए

उड गई चिडिया
कांपी
स्थिर हो गई पाती

चिडिया का उडना और पत्ती का कांपकर स्थिर हो जाना बाहरी जगत की वस्तुएँ है. परन्तु कवि इस बात को कहना नहीं चाहता. वह इसके माध्यम से कुछ और ही कहना चाहता है. जैसे- किसी के बिछुडने पर मन के आंगन में मची हलचल, बैचेनी, घबराहट, असुरक्षा का भाव आदि का होना. फ़िर मन की हलचलों के शांत हो जाने के बाद की प्रतिक्रिया को वे बाहरी वस्तु जगत की वस्त्यों के लेकर एक प्रतीक रचते हैं.

यथार्थ के धरातल पर यदि हम चीजों को देखें तो लगता है कि कहीं जडता सी आ गयी है. हमारी अनुभूतियां, संवेदनाएं, यदि यथार्थपरक भाषा में संप्रेषित हो रही हैं, तो सपाटबयानी सा लगता है. दरअसल हम जो कहना चाहते हैं वह पूरी तरह से संप्रेषित नहीं हो पा रहा है...कुछ आधा-अधूरा सा लगता है. यदि वही बात हम "प्रतीक" के माध्यम से कहते हैं तो वह उस बात को नए अर्थों में खोलता सा नजर आता है. दूसरे शब्दों में कहें कि मनुष्य अपने सूक्ष्म चिंतन को अभिव्यक्त करते समय प्रतीकों का सहारा लेता है. इस तरह मनुष्य का समस्त जीवन प्रतीकों से परिपूर्ण है. और वह प्रतीकों के माध्यम से ही अपनी बात को सोचता है. वैसे भी भाषा के प्रत्येक शब्द किसी न किसी वस्तु का प्रतीक-चिन्ह ही होते हैं. सामान्य शब्द का अर्थ जब तक वह सार्थक एवं प्रचलित रहता है- विभिन्न व्यक्तियों एवं विभिन्न प्रसंगों में भिन्न-भिन्न हो जाता है. "प्रतीक" की विवेचना करते हुए डा. नगेन्द्र कहते हैं कि,"प्रतीक" एक प्रकार से रुढ उपमान का ही दूसरा नाम है, जब उपमान स्वतंत्र न रहकर पदार्थ विशेष के लिए रुढ हो जाता है तो "प्रतीक" बन जाता है. इस प्रकार प्रत्येक प्रतीक अपने मूल रुप में उपमान होता

है. धीरे-धीरे उसका बिम्ब-रुप संचरणशील न रहकर स्थिर या अचल हो जाता है. डा. नामवरसिंहजी भी मानते हैं कि, बिम्ब पुनरावृत्त होकर "प्रतीक" बन जाता है.

उदाहरण स्वरुप= प्रयोगवाद के अनन्य समर्थक अज्ञेय की की एक कविता "सदानीरा" सादर प्रस्तुत है.

' "सबने भी अलग-अलग संगीत सुना
इसकी
वह कृपा वाक्य था प्रभुओं का
उसको आतंक/मुक्ति का आश्वासन
इसको/वह भारी तिजोरी में सोने की खनक
उसे/बटुली में बहुत दिनों के बाद अन्न की सौंधी खुशबु
किसी एक को नई वधू की सहमी-सी पायल ध्वनि
किसी दूसरे को शिशु की किलकारी
एक किसी जाल-फ़ांसी मछली की तडपन
एक ऊपर को चहक मुक्त नभ में उडती चिडिया की
एक तीसरे को मंडी की ठेलमठेल,ग्राहकों की अस्पर्धा भरी व
चौथे को मंदिर की ताल युक्त घंटा-ध्वनि
और पांचवे को लोहे पर- सधे हथौडे की सम चोंटें,
और छटे की लंगर पर कसमसा रही नौका पर लहरों की
अविराम थपक
बटिया पर चमरौंधों की संघी चाप सातवें के लिए
और आठवें की कुलिया की कटी मेंड से बहते जल की
इसे नमक...की एडी के घुंघरु की
उसे युद्ध का ढोल
इस संझा गोधूली कर लघु-चुन-दुन
उसे प्रलय का डमरुवाद
इसको जीवन की पहली अंगडाई

असाध्य वीणा में बिम्ब और प्रतीकों की जो गहन गहराती ध्वनि है वह बाद की कविता में दुर्लभ होती गई है.. इस देश की पूरी परम्परा और रीति-रिवाजों का और इस देश के भूभाग का विस्तृत अध्ययन अगर आपको करना हो तो यह कविता आपको वह सब बतला सकती है, जो बडे-बडे साहित्यकारों, इतिहासकारों और नृत्तत्वशास्त्रियों के बस का नहीं है,.देश केवल भौगोलिक मानचित्र पर बना देश नहीं होता, वह उस देश के असंख्य जीव-जंतुओं का भी होता है.

अज्ञेय की एक नहीं बल्कि अनेक कविताएं--मसलन-रहस्यवाद, समाधिलेख, हमने पौधे से कहा, देना जीवन, जितना तुम्हारा सच है, हम कृती नहीं है, मैंने देखा एक बूंद, नए कवि से, दोनो सच है, कविता की बात, पक्षधर, इतिहास बोध, आदि कविताएं हैं, जिनमें दर्शन या विचार अनुभूति की बिम्बभाषा में पूरी तरह आत्मसात हो जाते हैं.

अज्ञेय की एक कविता "कलगी बाजरे की' की बानगी देखिए
"अगर मैं तुमको
ललाती सांझ के नभ की अकेली तारिका
अब नहीं कहता

या शरद के भोर की नीहर-न्हायी-कुंई
टटकी काली चम्पे की
वैगरह तो
नही कारण कि मेरा हृदय उथलाया कि सूना है
या कि मेरा प्यार मैला है
बल्कि केवल यही
ये उपमान मैले हो गए हैं
देवता इन प्रतीकों के कर गए हैं कूच
कभी बासन अधिक घिसने से मुलम्मा छूट जाता है.

(२) नदी के द्‌वीप
हम नदी के द्‌वीप हैं
हम नहीं कहते कि हमको छोडकर स्त्रोतस्विनी बह जाए
वह हमें आकार देती है
हमारे कों,गलियाँ, अंतरीप,उभार,सैंकत-कूल
सब गोलाइयाँ उसकी गढी हैं
माँ है वह ! है उसे से हम बने हैं......मातः उसे फ़िर संस्कार तुम देना

यह पूरी कविता बिम्बों और प्रतीकों से सम्प्रेषित कविता है... एक विचार है. इससे पहले हिन्दी में एक रुढ मान्यता यह रही है कि आधुनिक काव्यभाषा बिम्बधर्मा होती है और वक्तव्य उससे अकाव्यात्मक चीज है, लेकिन नई कविता के शीर्ष कवि और सिद्‌धांतकार अज्ञेय ने महज इस कविता में ही नहीं बल्कि अपनी अनेक कविताओं में प्रतीक-बिम्ब और वक्तव्य की परस्पर अपवर्ज्यता को अमान्य किया है. कई दौरों में लिखी गई कविताएँ=जैसे= रहस्यवाद, समाधि-लेख, सत्य तो बहुत मिले, हमने पौधे से कहा, देना जीवन, अकवि के प्रति कवि, हम कृती नहीं है, मैंने देखा एक बूंद ,नए कवि से, चक्रांत-शिला, पक्षधर, कविता की बात आदि कविताओं में निःसन्देह कुछ ऎसी कविताएं है, जिनमे दर्शन, अनुभूति की बिम्बभाषा अपनी संपूर्णता के साथ समाए हुए हैं.

अपनी विचार-कविता (भवन्ती-१९७२) में वे लिखते हैं

"विचार कविता की जड में खोखल यह है कि विचार चेतन क्रिया है जबकि कविता की प्रक्रिया चेतन और अवचेतन का योग है, जिसमें अवचेतन अंश अधिक है और अधिक महत्वपूर्ण है......"विचार कविता" का समर्थक यह कहे कि उसमें एक स्तर रचना सर्जना का है, साथ ही दूसरा स्तर है जिसमें कल्पना से प्राप्त प्राक-रुपों बिम्बों में चेतन आयास से वस्तु या अर्थ भरा गया है, तो वह उस प्रकार की कविता को अलग से पहचानने में योगदान देगी, पर यह आपत्ति बनी रहेगी कि यह दूसरा स्तर तर्क-बुद्‌धि का स्तर है, रचना का नहीं. अर्थात "विचार कविता" कविता नहीं, कविता विचार है और ऎसी है तो उसकी "कविता" पर विचार करने के लिए "उसके विचार" को अलग देना होगा या [रसंगेतर मान लेना होगा."

देश और प्रदेश के ख्यातिलब्ध कवि श्री चन्द्रकांत देवतालेजी ने जातीय जीवन में व्याप्त क्रूरता और निरंकुशता को महसुस करके लिखी गई कविता "उजाड में संग्रहालय" की अन्तिम कविता का शीर्षक है="यहाँ अश्वमेघ यज्ञ हो रहा है". आज के घटित यथार्थ से मुठभेड की कविता. इसमें अश्वमेघ का घोडा और घण्टाघर की सार्वजनिक घडी "प्रतीक" बनकर वातावरण और ज्यादा तनावपूर्ण बनाते हैं. बरसों पहले मुक्तिबोध की कविता "अंधेरे में" भी एक शोभा यात्रा का वृतांत आया था, यहाँ भी है

जिस शोभा यात्रा में पिछलग्गुओं की भीड थी कित्ती
उसी का तो उत्तरकाण्ड इस महापंडाल में
नहीं,नहीं इस महादेश में भी
हर तरफ़ “अंधेरे में” का उत्तरकाण्ड
तब तो बस एक था डॊमाजी उस्ताद
अब तो देखो जिसे वही वही वही...
हर दूसरा काजल के बोगदे में
तीसरा तस्कर मंत्र-जाप करता
चौथा आग रखने को आतुर बारुद के ढेर पर
और पहला कौन है क्या सत्तासीन अथवा बिचौलिया
बिका हुआ सज्जन
पाँचवा-छठा-सातवां फ़िर गिनती के बूते के बाहर संख्या में
शामिल होते हैं अन्दर जाते हैं–बाहर जाते हैं
पवित्र गन्ध से आच्छादित है नगर का आकाश
जिसका नगर कोई नहीं जानता
यहाँ अश्वमेघ यज्ञ हो रहा है (पृ.१५०)

विश्व विख्यात कवि श्री विष्णु खरे की एक कविता सिलसिला (“सब की आवाज के पर्दे में” संग्रह से)

कहीं कोई तरतीब नहीं
वह जो एक बुझता हुआ सा कोयला है
फ़ूँकते हुए रहना है उसे
हर बार राख उडने से
जिससे भौंहे नहीं आँख को बचाना है
वह थोडा दमकेगा
जलकर छॊटा होता जाएगा
लेकिन कोई चारा नहीं फ़ूँकते रहने के सिवा
ताकि जब न बचे साँस
फ़िर भी वह कुछ देर तक सुलगे
उस पर उभर आई राख को
यकबारगी अंदेशा हो लम्हा भर तुम्हारी साँस का
अंगारे को एक पल उम्मीद बँधे फ़िर दमकने की
इतना अंतराल काफ़ी है
कि अप्रत्याशित कोई दूसरी साँस जारी रखे यह सिलसिला

इस कविता में कोयला एक प्रतीक है. उसमें धधकती आग को जलाए रखना जरुरी है ताकि उस पर रोटियाँ सेकी जा सके. देश में व्याप्त गरीबी-मुफ़लिसी-बेहाली-तंगहाली को बयां करती यह कविता अन्दर तक उद्वेलित कर देती है.

विश्व विख्यात कवि श्री लीलाधर मंडलोई की कविता की बानगी देखिए

पहले
माँ चाँवल में से कंकर बीनती थी
अब
कंकड में से चाँवल बीनती है.

यहाँ कंकड गरीबी का और चाँवल अमीरी का प्रतीक है. घर में जहां कभी सम्पन्नता थी, अब वहाँ गरीबी का ताण्डव है. दोनो ही परिस्थितियों को उजागर करती यह कविता आत्मा को हिलाकर रख देती है.

अपनी कविताओं में प्रतीक का उपयोग करने श्री अरुणचंद्र राय की एक कविता की बानगी देखिए.
"शर्ट की जेब/होती थी भारी/सारा भार सहती थी/कील अकेले

नए बिम्बों के प्रयोग में संदर्भ में इस कविता को देखें. उन्होंने कील को प्रतीक के रुप में लिया है. कील का विशिष्ठ प्रयोग यहां एक मानवीय संवेदना की प्रतिमुर्ति बनकर सजीव हो उठी है. जड-बेजान कील यहां कील न रहकर सस्वर हो जाती है.- एक नए अर्थ से भर उठती है. अपनी अर्थवत्ता से विविध मानसिक अवस्थाओं -आशाओं, आवेग, आकुलता, वेदना, प्रसन्नता, स्मृति, पीडा व विषाद आदि के मार्मिक चित्र उकेरती है.

कविता को पढते ही एक चित्र हमारी आंखों के सामने थिरकने लगता है. कील पर जो पिता की कमीज टंगी है, उस टंगी कमीज में निश्चित ही जेब भी होगी. और जेब है तो उसमें पैसे भी होंगे. वे कितने हो सकते है, कितने नहीं, इसे बालक नहीं जानता. संभव है वह खाली भी हो सकती है लेकिन उसके मन में एक आशा बंधती है कि जेब में रखे पैसों से चाकलेट खरीदी जा सकती है, पतंग खरीदी जा सकती है. और कोई खिलौना भी लिया जा सकता है. यह एक नहीं अनेक संवेदनाओं को एक साथ जगाता है. लेकिन बच्चा नहीं जानता कि उस जेब के मालिक अर्थात पिता को कितनी मुश्किलों का सामना करना पडा होगा, अनेक कष्टॊ को सहकर उसने कुछ रकम जुटाई होगी और तब जाकर कहीं चूल्हा जला होगा और तब जाकर कहीं वह अपने परिवार का उत्तरदायित्व संभाल पाया होगा.

अपने आशय को साफ़ और सपाट रुप में प्रस्तुत करने के बजाय कवि ने सांकेतिक रुप से उस मर्म को, बात की गंभीरता.को मूर्त जगत से अमूर्त भावनाओं को प्रतीक बनाकर प्रस्तुत किया है.

शाश्वत सत्य की व्यंजना प्रस्तुत करना हो तो वह केवल और केवल प्रतीकों के माध्यम से की जा सकती है. ऎसा किए जाने से अर्थ की गहनता, गंभीरता तथा बहुस्तरीयता की संभावनाएं बढ जाती है

शंकरानन्द का कविता संग्रह "**दूसरे दिन के लिए**" एक नए तरह के प्रतीक और बिम्ब के जरिए प्रभावित कर देने वाला काव्य-लोक है. छोटी-छॊटी कविताएं अपने विन्यास में भले ही छोटी जान पडॆ, पर अपनी प्रकृति में अपनी रचनात्मक शक्ति के साथ, चेतना को स्पर्ष करती है और बेचैन भी. बानगी देखिए

माँ चुल्हा जलाकर बनाती है रोटी
या छौंकती है तरकारी
कुछ भी करती है कि
उसमें गिर जाता है पलस्तर का टुकडा
फ़िर अन्न चबाया नहीं जाता
पलस्तर एक दुश्मन है तो

उसे झाड देना चाहिए
मिटा देना चाहिए उसे पूरी तरह

डा रामनिवास मानव की काव्य रचनाओं में, वे कविता, दोहा, द्विपदी, त्रिपदी, हायकू आदि में से चाहे किसी भी विधा की क्यों न हो, प्रतीकों का सुदृढ एवं सार्थक प्रयोग करते हैं. प्रतीकों के माध्यम से वे ऎसा बिम्ब प्रस्तुत करते हैं, जिनमे यथार्थ हो, प्रतिभासित हो ही जाता है. पाठक की कल्पना भी अपना क्षेत्र विस्तृत करने के लिए विवश हो जाता है. उनकी एक जानदार कविता है-"शहर के बीच". इसकी बानगी देखिए

जब भी निकलती है बाहर
कोई चिडिया घोंसले से
बाज के खूनी पंजे
दबोच लेते हैं उसे.

यहां बाज और चिडिया का प्रयोग बहुआयामी है. बाज-प्रशासक, शोषक या आतंकवादी कोई भी हो सकता है. चिडिता- जनता शोषित या आतंकवाद का शिकार, कुछ भी हो सकता है.

इनकी काव्य रचना में दिन-रात, घटा-बिजली, बाघ-भेडिये, बन्दर-भालू, कौवे-बगुले, गिद्द-गिरगिट, फ़ूल-कांटे अदि न जाने कितने प्रतीक आते है और पूरी अर्थवत्ता के साथ आते हैं.

एक बानगी देखिए- कौवे,बगुले,गिद्द यहाँ हैं/ सारे साधक सिद्ध यहाँ है

डा. मानव की एक और रचना देखिए जिसमें प्रेमचंदजी का गाँव है. गाँव है तो उसमे होरी है, गोबर है. गरीबी है, मुफ़लिसी है, अभाव है, भूख है, मजबूरियां है. इतनी सारी बातें मात्र तीन लाइन मे कवि अपने अन्तरमन की बात,- अपने मन की पीडा कम से कम शब्दों में "प्रतीकों" के माध्यम से कह जाता है.

प्रेमचंद के गाँव मे
पडी है आज भी बेडियाँ
है होरी के पाँव में

(२) भाग्य खिचता डोरियाँ
होरी तडपे भूख से
गोबर ढोता बोरियाँ

देश में नेताओ, दलालों, अफ़सरों आदि के कारनामे और व्ववस्था में आई गिरावट और विसंगतियों को देखकर वे लिखते हैं

धूर्त भेडिये/ और रंगे सियार/करते राज
तभी देश समूचा /लगे जंगल राज

(२) भालू के बाद बन्दर की बारी है
राजनीति के मंच पर घटिया प्रदर्शन जारी है.

मंगलेश डबराल की एक कविता (स्मृति से साभार)

रात भर हम देखते हैं
पत्थरों के नीचे
पानी के छलछला का स्वपन

यहाँ पत्थर कठोरता, पानी का छलछलाना करुणा का प्रतीक है.

श्रीकांत वर्मा "हस्तिनापुर" से साभार

संभव हो
तो सोचो
हस्तिनापुर के बारे में
जिसके लिए
थोडॆ-थोडॆ अंतराल में
लडा जा रहा है महाभारत. (यहाँ हस्तिनापुर प्रतीक है सत्ता का)

मंगलेश डबराल की एक कविता की बानगी देखिए.

मेरे बचपन के दिनों में
एक बार मेरे पिता एक सुन्दर सी टॉर्च लाये
जिसके शीशे में गोल खांचे बने हुए थे जैसे आजकल कारों कि हेडलाईट में होते हैं
हमारे इलाके में रोशनी कि वह पहली मशीन
जिसकी शहतीर एक चमत्कार कि तरह रात को दो हिस्सों में बाँट देती थी।
एक सुबह मेरी पड़ोस की दादी ने पिता से कहा
बेटा इस मशीन से चूल्हा जलाने कि लिए थोड़ी सी आग दे दो

पिता ने हंसकर कहा चाची इसमें आग नहीं होती सिर्फ उजाला होता है
यह रात होने पर जलती है
और इससे पहाड़ के उबड़-खाबड़ रास्ते साफ दिखाई देते हैं

दादी ने कहा बेटा उजाले में थोडा आग भी रहती तो कितना अच्छा था
मुझे रात को भी सुबह चूल्हा जलाने की फ़िक्र रहती है
घर-गिरस्ती वालों के लिए रात में उजाले का क्या काम
बड़े-बड़े लोगों को ही होती है अँधेरे में देखने की जरूरत
पिता कुछ बोले नहीं बस खामोश रहे देर तक।
इतने वर्ष बाद भी वह घटना टॉर्च की तरह रोशनी
आग मांगती दादी और पिता की ख़ामोशी चली आती है
हमारे वक्त की कविता और उसकी विडम्बनाओं तक

इसमें टार्च केवल एक प्रतीक भर है, लेकिन इसके भीतर से कितने कोलाज बनते हैं और एक नया अर्थ यहां देखने को मिलता है,

(२) चाहे जैसी भी हवा हो /यदि हमें जलानी है अपनी आग/ जैसा भी वक्त हो/ इसी में खोजनी है अपनी हँसी/ जब बादल नहीं होंगे/ खूब तारे होंगे आसमान में / उन्हें देखते हम याद करेंगे/ अपना रास्ता.

यहाँ हवा परिस्थितियों की प्रतीक है, आग क्रांति की और बादल परेशानियों का.

गोवर्धन यादव की एक कविता (शेरशाह सूरी के घोडॆ से साभार)

पत्र पाते ही खिल जाता है
उसका मुरझाया चेहरा
और बहने लगती है एक नदी हरहराकर
उसके भीतर.

(इसमे घोडॆ प्रतीक है जो उजाड और नीरस जीवन में खुशियां लाते है औरजिनके आते ही वह प्रसन्नता से भर उठती है

(२ मेरे अन्तस में बहती है एक नदी
ताप्ती
जिसे मैं महसूसता हूँ अपने भीतर
जिसकी शीतल, पवित्र और दिव्य जल
बचाए रखता है,मेरी संवेदनशीलता
खोह,कन्दराओं,जंगलों और पहाडॊं के बीच
बहती यह नदी
बुझाती है सबकी प्यास
और तारती है भवसागर से पापियों को
इसके तटबंधों में खेलते हैं असंख्य बच्चे
स्त्रियाँ नहाती हैं
और पुरुष धोता है अपनी मलीनता
इसके किनारे पनपती हैं सभ्यताएँ
और, लोकसंस्कृतियाँ लेती है आकार
लोकगीतों और लोकधुनों पर
मांद की थापों पर
टिमकी की टिमिक-टिमिक पर
थिरकता है लोकजीवन (यहाँ नदी एक प्रतीक के रुप में आती है) ०

पुलिस महानिदेशक श्रीविश्वरंजनजी की एक कविता की बानगी देखिए

वह लडकी नही पूछती है
यह सब अब
वह आँखें नीची रखती है
उसने खुद को बचा रखा है
बडॆ-बुजुर्गों के आदेशानुसार
आदिम बलि के लिए

(२) आसमान से बाजारी शमशीर
खतरनाक तरीके से
काट रही थी हवा को
ऊर्जारहित, शक्तिहीन,तेजस्वितारहित
वह एक भारी झूठ-सा गडा रहा दलदल में
बाजार की मार झेलने के लिए/वह बेचारा आदमी

वह लडकी सचमुच बडी हो गई
हर भारतीय कस्बे की लडकी की तरह
और
बहुत अंदर से हार गई है.

(३) मैं जानता हूँ बहुत गरीबी है
मैं जानता हूँ बहुत मुफ़लिसी है, यहाँ दर्द है,तडपन है..
चलो बाहों में बाहें डाल अपने अपने न बोले जाने वाले
सत्यों और अनुभूतियों के/
साथ घूम आयें क्षितिजों से पार

डा.बलदेव कि कविता की एक बानगी

पॅड छायादार, पेडों की संख्या में एक पेड और
बच्चा पूछ रहा- माँ कहाँ है ?
वृक्ष में तब्दील हो गयी, औरत के बारे में
मैं क्या कहूँ, कैसे कहूँ, वह कहाँ है

युवा कवि रोहित रुसिया की कविता की एक बानगी

सहेज लेना चाहता हूँ
अपने पिता की तस्वीर के साथ
थोडा सा धान और कुछ गेहूँ की बालियाँ
कि भरपूर हाईब्रीड के जमाने भी
मेरी आने वाली पीढियाँ महसूस कर सकें
अपनी जडों की महक

जब मिलेंगे हम दोनो
किसी ने कुछ भी नहीं कहा
तुम आयीं, बहने लगा झरना
तुम मुस्कुरायीं
खिल गए सारे फ़ूल
मैं चुपचाप महसूस करता रहा
वसन्त अपने भीतर

उपरोक्त कविताओं के माध्यम से हमने देखा की "प्रतीक" के माध्यम से हम अपने आशय को साफ़- सपाट रुप में प्रस्तुत करने की जगह सिर्फ़ सांकेतिक रुप में अर्थ की व्यंजना करते हैं तो हमारे कहन में अर्थ की गहनता, गंभीरता तथा बहुस्तरीयता बढ जाती है और साथ ही कविता का सौंदर्य भी. बस यहाँ ध्यान दिए जाने की जरुरत है कि कि कविता की विशिष्ट लय बाधित नहीं होनी चाहिए.

....

8

हिन्दू-विवाह पद्दति में संस्कारों की महत्ता

संसार की प्रत्येक वस्तु, स्वयं को दिव्य, भव्य तथा आकर्षकरुप में प्रस्तुत करने के लिए संस्कार की अपेक्षा रखती है. संस्कार का अर्थ ही-परिमार्जित रुप में प्रस्तुति है. संस्कार वैज्ञानिक अवधारणा के रुप में विकसित भारतीय जीवन-पद्दति की सर्वाधिक स्पृहणीय, सर्वस्वीकृत एवं महत्वपूर्ण आनुष्ठानिक प्रक्रिया है. संस्कारों के द्वारा वस्तु या प्राणी कॊ और अधिक संस्कृत, परिमार्जित एवं उपादेय बना ही इसका मुख्य उद्देश्य है अर्थात संस्कार पात्रता पैदा

करते हैं. सभ्यता, संस्कृति एवं प्रज्ञा के विकास के साथ-साथ भारतीय मनीषियों ने मनुष्य-जीवन को अधिकाधिक क्षमतासम्पन्न, संवेदनशील, भावप्रवण एवं उपयोगी बनाने के लिए ही संस्कारों की अनिवार्यता स्वीकार की है.

भौतिक पदार्थों का ही नहीं अपितु समस्त प्राणि-जगत, पशु-पक्षी भी अपनी-अपनी तरह से संस्कार करते हैं. मनुष्य तो स्वयं चैतन्य है. उसका जन्म अपनी जननी की कोख से प्राकृत रुप में हुआ है, पर उसके प्राकृत जीवन को अपेक्षाकृत अधिक परिष्कृत, संवेदनशील एवं लक्ष्योन्मुख बनाने के लिए संस्कारों की मर्यादा निर्धारित है.

संस्कारों का विस्तृत विवेचन धर्मशास्त्रीय ग्रन्थों के साथ-साथ आयुर्वेद एवं पुराण आदि में भी मिलता है. धर्मशास्त्रों में विशेषतः पारस्कर, सांख्यायन, आश्र्वलायन आदि गृह्यसूत्रों में इनकी संख्या पृथक-पृथक मिलती है. गौतमसूत्र में अडतालिस संस्कारों का उल्लेख है, जबकि सुमन्तु ने पच्चीस संस्करों का उल्लेख किया है. वहीं व्यासस्मृति में सोलह संस्कारों का विवरण है. वे इस प्रकार हैं- (१) गर्भाधारण,(२) पुंसवन, (३)सीमन्तोन्नयन (४)जातकर्म(५)नामकरण (६) निष्क्रमण(७) अन्नप्राशन (८) चूडाकरण (९) कर्णवेध (१०) उपनयन (११) वेदारम्भ (१२) केशान्त (१३) समावर्तन (१४) विवाह (१५) वानप्रस्थ (१६) संन्यास एवं अन्तयेष्टि.

इसमें प्रथम तीन-गर्भाधान, पुंसवन एवं सीमन्तोन्नयन प्रसव से पूर्व के हैं, जो मुख्यतः माता-पिता द्वारा किए जाते हैं. अग्रिम छः-जातकर्म से कर्णवेध तक बाल्यावस्था के हैं, जो परिवार–परिजन के सहयोग से सम्पन्न होते हैं. अग्रिम तीन-उपनयन, वेदारम्भ, समावर्तन विध्याध्ययन से सम्बद्ध है, जो मुख्यतः आचार्य के निर्देशानुसर सम्पन्न होते हैं. विवाह, वानप्रस्थ एवं सन्यास-ये तीन संस्कार तीन आश्रमों के प्रवेशद्वार हैं तथा व्यक्ति स्वयं इनका निष्पादन करता है और अन्तयेष्टि जीवन-यात्रा का अन्तिम संस्कार है, जिसे पुत्र-पौत्र आदि पारिवारिक जन तथा इष्ट-मित्रों के सहयोग से किया जाता है.

उपरोक्त सोलह संस्कारों में हम केवल विवाह-संस्कार को लेकर चर्चा करेंगे. जैसा कि हम जानते ही हैं कि आर्यों ने पवित्र, सरल, स्थिर और सुखमय जीवन-यापन के उद्देश्य से मानव और मानवों के लिए अपने जीवन को संयम, सदाचार, त्याग, तप, सेवा, शांति, एवं धर्म आदि अनेक कल्याणकारी-गुणों से परिष्कृत करने एवं अविनय, कदाचार तथा विलासिता आदि दुर्गुणों से दूर रहने के लिए "विवाह-संस्कार" को आवश्यकतम माना है. उनके विज्ञान में इस पवित्रतम संस्कार के बिना इन आवश्यक कल्याणकारी-गुणों का विकास एवं दुर्गुणों का उच्छेद दुःशक्य ही नहीं, अपितु असम्भव है.

<u>विवाह एक सांसारिक अव्यवस्थाओं कॊ दूर करने वाला संस्कार है. इससे पुरुष सुसंस्कृत, सभ्य एवं धर्मात्मा बनता है.</u> पुरुष की अपने शरीर में जितनी ममता होती है, उतनी अन्य वस्तुओं में नहीं. विवाह के द्वारा उसकी ममता अपने शरीर से ऊपर उठकर पत्नी में, फ़िर संतान होने पर, वही ममता पुत्र-कन्या आदि में बंट जाती है. वही प्रेम घर की चारदीवरी से प्राम्भ होकर मुहल्ला, गली, ग्राम, नगर, प्रांत, देश फ़िर क्रमशः समस्त विश्व में व्याप्त हो जाता है. गृहस्थ के इस महाविद्द्यालय में त्याग-प्रेम आदि का पूर्ण अभ्यास कर जब पति-पत्नी उसी प्रेमभाव-त्यागभाव का प्रयोग परमेश्वर की दिशा की ओर प्रवृत्त कर देते हैं, तब वे परमेश्वर के निकट पहुँच जाते हैं. यही शास्त्रानुसार उनके जीवन का परम एवं चरम लक्ष्य हुआ करता है.

हिन्दू-विवाह का परम लक्ष्य कामवासना-पूर्ति नहीं है, किंतु यज्ञ में अधिकार-प्राप्ति तथा सात्त्विक प्रेम में प्रवृत्ति और वेदादि शास्त्र में प्रेम उत्पन्न करना है. वेदमन्त्रों से विवाह शरीर और मन पर विशिष्ठ संस्कार उत्पन्न करने वाला होता है. इससे धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष तक की प्राप्ति हुआ करती है.

यदि विवाह संस्कार न होता तो पुरुष की न तो पत्नि ही होती, न माँ, न बहन और न उसकी कोई लडकी आदि संतान होती. तब पुरुष का न तो घर होता और न ही कोई विद्ध्यालय होता. विवाहरहित राष्ट्र धर्म, शिक्षा संस्कृति, कला, विज्ञान आदि से सर्वथा शून्य एक पशु-राष्ट्र होता. इसी विवाह-संस्कार ने मनुष्य को व्यवस्थित किया, परिवार दिया, प्रेम दिया, घर बसाने की और विद्या पाने की प्रेरणा दी. विवाह से ही सुवर्णमय संसार बस गया.

हिन्दू विवाह में स्त्री केवल कामपूर्ति का यंत्र नहीं बनतीं, किंतु धर्मपत्नी बनती है,. इसी के द्वारा स्त्री में पातिव्रत्य इतना कूटकर भर दिया जाता है कि वह अपने पति के अतिरिक्त पुरुषों को पिता, भ्राता या पुत्र की दृष्टि से देखती है

इसी हिन्दू-विवाह के परिणामस्वरुप भारतवर्ष का पातिव्रत्यधर्म देश-विदेश में सुप्रसिद्ध है. इसमें पति-पत्नी एक द्वार के दो दरवाजे हैं, एक मुख की दो आँखें हैं, एक रथ के दो चक्र हैं. इसी हिन्दू-विवाह से दम्पत्ती एक-दूसरे से अविश्वस्त नहीं रहते, पक्का गठजोड रहता है. इस विवाह विधि में देवताओं की साक्षी होती है. हिन्दू- संस्कृति में इसी सत्य का साक्षात्कार ही मानव-जीवन का लक्ष्य माना गया है.

तेजी से बदलते परिवेश में हम संस्कारविहीन होते जा रहे है. इस संस्कारहीनता का परिणाम संयुक्त परिवारों के टूटने के रुप में हमारे सामने आ रहा है. पिता द्वारा सम्पत्ति के लिए पुत्र की हत्या, तो कहीं पुत्र द्वारा पिता की हत्या किए जाने की घटनाएं सामने आ रही है. जीवन भर साथ निभाने का संकल्प लेने वाली पत्नी मर्यादाहीनता का शिकार बनकर परपुरुषों से सम्बन्ध बनाने में नहीं हिचकचा रही है. इतना ही नहीं, समाचार-पत्रों में जब पत्नी ने प्रेमी के साथ षडयन्त्र रचकर पति की हत्या करा डाली, जैसे समाचार प्रकाशित होता है हृदय कांप उठता है. तो कहीं छोटी=छॊटी बातों पर हुआ विवाद तलाक का रुप लेने लगा है. तलाक के अधिकांश आवेदनों में दहेज के नाम पर धन मांगने जैसे आरोप लगाए जा रहे हैं. रही सही कसर दूरदर्शन पर ऎसे-ऎसे धारावाहिक प्रसारित किए जा रहे हैं, जिनमे युवक-युवतियों के विवाहपूर्व सम्बन्ध दिखाए जा रहे हैं. इन अवैध सम्बन्धों को "प्रेम" प्रदर्शित कर युवा पीढी को संस्कारहीन बनाया जा रहा है. ठगी-चोरी तथा भ्रष्टाचार के नए-नए तरीके इन धारावाहिकों में प्रदर्शित करने के कारण युवकों को एक प्रकार से अपराधों का प्रशिक्षण प्राप्त हो रहा है. संस्कारहीनता के इससे घृणित परिणाम और क्या हों सकते हैं ?

शिक्षा पद्दति से आये बदलाव के कारण भी अनेक सामाजिक समस्याएँ पैदा हुईं.. मैकाले के मानस-पुत्रों ने भारतीय संस्कृति, वेदों, पुराणों इत्यादि को रुढिवादी, काल्पनिक तथा अवैज्ञानिक कहकर तिरस्कृत किया. उन्होंने यह काम इतनी चालाकी और चतुराई से किया कि हम उनके झांसे में आ गए और अपने आपको पाश्चात्य संस्कृति में डूबो लिया और अपने हाथों अपने पूर्वजों द्वारा स्थापित सामाजिक मर्यादाओं का और संस्कारों का ताना-बाना छिन्न-भिन्न करने में पिल पडॆ. परिणाम -भयंकररुप से सामने खडा होकर अट्टहास कर रहा है.

अब भी देर नहीं हुई है. हमें इन सब बातों पर गम्भीरतापूर्वक विचार करने की आवश्यक्ता है. और अपनी संस्कार-सम्पन्न गौरवमयी सुदीर्घ परम्परा को समझते हुए तदानुसार उसका आचरण करना होगा. तब जाकर हम पुनः अपने खोये हुए गौरव और आदर्शों को प्रतिष्ठित कर सकेंगे.

एक आइडिया:- जो आपकी जिन्दगी बदल दे

अगर यह कहा जाए कि आदमी विचारों का पुलिन्दा है, तो इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता. कभी-कभी एक साथ कई-कई विचार साथ चलते रहते है. उसे रोक सकना आदमी के वश में नहीं है. जब कोई विचार या सोच,athaaattअथवा कल्पना विस्फ़ोटक बन जाए तो क्रान्तिकारी परिणाम देखने को मिल सकते है. एक उदाहरण हमारे सामने है महात्मा गांधीजी का. हम जैसे साधारण इन्सान ही थे वे ,लेकिन उनके अन्दर जब एक विचार का विस्फ़ोट हुआ तो उसने उनकी दिशा ही बदलकर रख दी. वे एक बरिस्टर की हैसियत से साउथ अफ़्रीका,अपने मुवक्किल का केस लडने के लिए गये हुए थे. उनके पास रेल्वे का प्रथम श्रेणी का टिकिट था, एक अंग्रेज अफ़सर उस कम्पार्ट्मेन्ट में आया और उसने एक भारतीय को उस कोच में सफ़र करते देखा और आगबबुला हो उठा. उसने गांधीजी का सामान बाहर फ़ेंक दिया और उन्हे उतरवा दिया. गांधीजी ने इस बात का विरोध किया .फ़लस्व्ररुप उनके अन्दर एक विचार ने जन्म लिया और उन्होंने अंग्रेजो के खिलाफ़ मोर्चा खोल दिया. परिणाम आप सब जानते हैं. ईस्ट इंडिया कंपनी का सूरज, जो कभी अस्त नहीं होगा, ऎसा माना जाता था ,अस्त हुआ. एक दूसरा उदाहरण हमारे सामने है. आईजक न्युटन बागीचे में बैठा हुआ था, तभी एक सेव नीचे टपक पडा. एक विचार का विस्फ़ोट हुआ और वह यह सोचने पर मजबूर हुआ कि वह नीचे क्यों गिरा ? वह तो ऊपर आसमान में भी जा सकता था. एक जुनून की हद पार करते हुए आखिर उसने एक ऎसा सिद्धांत खोज निकाला और उन्होंने दुनिया को गुरुत्वाकर्शण और गति के नियम दिए. प्रकाश संबंधी सिद्धांत खोजे और पहली परावर्तित दूरबीन बनाई. केल्कुलस की उनकी खोज विज्ञान के लिए बहुत महत्वपूर्ण साबित हुई. ऎसे एक नहीं अनेको उदाहरण दिए जा सकते है,जो यह सिद्ध करते है कि आदमी ने अपने भीतर की शक्ति को जगाया और नई इबारत लिखी. यह बात अलग है कि हर किसी को एक जैसी स्थितियाँ नहीं मिलती. किसी को दुनिया ने पहले दिन लायक ही नहीं माना और किसी को हर बार हताश किया. कुछ ही ऎसे थे जिन्हें सनकी या नाकाम होने के लिए बने बताया गया.

एक गरीब किसान परिवार में जन्में फ़ोर्ड को बचपन से ही मशीने बनाने का जुनून था. अपने जीवन के सोलहवें बरस मे इन्होंने स्टीम इंजिन और घडियां सुधारने का काम किया .बाद मे कई व्यवसाय किए लेकिन उन्हें सफ़लता नहीं मिली. सहसा फ़ोर्ड के मन में एक विचार आया कि क्यों न एक ऎसी कार का निर्माण किया जाए जिसका उत्पादन और उपयोग बडे पैमाने पर हो और वह आम आदमी के पहुँच मे भी हो. उन्होंने आठ सिलेन्डर वाला एक इंजन बनाया. वे लगातार इस प्रयोग में जुटे रहे .अंततः वे इसमे सफ़ल हो सके. आज उनकी बनाई कारों पर दुनिया चलती है.

सैम जॉन्सन के पिता किताबें बेच कर घर चलाते थे. बचपन में बीमारी की वजह से इनका चेहरा विकृत हो गया और एक आंख खराब हो गई. लेकिन पढने के धुन के पक्के सैम १९-२० बरस की उम्र मे ऑक्सफ़ोर्ड पढने गए, लेकिन पैसों की तंगी की वजह से बिना डिग्री लिए वापस लौट आए. सन १७३६ मे एक स्कूल खोला, लेकिन नही चल पाया. वे लंदन आ गए और पत्रकारिता करने लगे. दूसरों के नाम से किताबें लिखीं. यश-

प्रतिष्ठा तो मिली लेकिन पैसा नहीं. लगातार आठ साल तक कडी मेहनत के बाद उन्होंने अंग्रेजी भाषा की डिक्शनरी तैयार की और देखते ही देखते प्रसिद्धि पर जा पहुँचे. १० वीं शताब्दी के प्रख्यात आलोचक,लेखक,पत्रकार और कवि के रुप मे वे जाने जाते है. अंग्रेजी भाषा उनके शब्दकोश के लिए सदैव ऋणी रहेगी.

क्रिस्टोफ़र कोलंबस की जुनून भारत को खोजने की थी. इस विचार को सुनने के बाद से वे कई बार हंसी के पात्र बने .लेकिन धुन के धनी कोलंबस का मानना था कि यदि पृथ्वी गोल है तो वे उसे खोज निकालेंगे. उस समय उनकी उम्र महज सतरह साल की थी. उन्होंने जी तोड मेहनत की,लेकिन सफ़लता अभी कोसों दूर थी. उन्होंने स्पेन की महारानी से जहाज मांगे. जहाज तो मिल गए पर सनकी समझे जाने वाले कोलंबस को किसी ने साथ नहीं दिया. अंततः उन्होने ८८ कैदियों को साथ लिया और यात्रा पर निकल गए. भारत तो वे खोज नहीं पाए लेकिन अमेरिका को खोज निकाला.

कार्ल मार्कस का भी जीवन संघष में बीता. पिता ने व्यावसायिक हित साधने के लिए यहूदी धर्म छोडकर ईसाई धर्म अपना लिया. इसका व्यापक प्रभाव उन पर पडा और धर्म के नाम पर चिढ पैदा हो गई. उग्र विचार और क्रान्तिकारी गतिविधियों के चलते उन्हे जर्मनी फ़िर बेल्जियम और फ़ांस से निर्वासित किया गया. पैसों की तंगी तो थी ही. उसी समय उनके पुत्र का देहावसान हुआ तो कफ़न तक के पैसे उनके पास नहीं थे. इन तमाम परेशानियों के चलते उन्होंने दास केपिटल लिखा ,जिसने दुनिया की तस्वीर ही बदलकर रख दी. पहला साम्यवाद का पाठ उन्होंने दुनिया को पढाया.

जार्ज वाशिंगटन की शुरुआत एक सैनिक के रुप में हुई. सैन्य प्रमुख के पद तक पहुँचे जार्ज की प्रेरणा और नेतृत्व की वजह से साधनहीन सेना ने अंग्रेजी सेना पर जीत दर्ज कर लोकप्रिय हुए. जब उनका चुनाव राष्ट्रपति पद के लिए हुआ तो पडॊसी अमीर से ६०० डॉलर का कर्ज लेना पडा. हकलाहट के बावजूद चर्चिल ब्रिटेन के प्रधानमंत्री बने. राजनीति के अलावा साहित्य,इतिहास और सैन्य अभियानों पर लिखी किताबों की वजह से उन्हें साहित्य का नोबेल पुरस्कार मिला .किंगस्टीफ़न को सिंड्रेला की तर्ज पर एक अलौकिक शक्तियों वाली एक लडकी की कहानी लिखने का विचार आया. कुछ लिखने के बाद विचार आया कि यह लोकप्रिय नहीं होगा तो उन्होंने उसे रद्दी की टोकरी के हवाले कर दिया लेकिन पत्नि के प्रोत्साहन ने उन्होंने उसे पूरा किया.: "कैरी" नाम से प्रकाशित यह उपन्यास १९७३ मे प्रकाशित हुआ और उन्हें चार सौ डॉलर मिले. उस उपन्यास के पैपरबैक संस्करण की रिकार्ड तोड बिक्री हुई और सफ़लता की उंचाइयों तक जा पहुँचे. वे पहले लेखक थे जिनकी तीन पुस्तकें एक साथ न्यूयार्क टाइम्स की बेस्टसेलर लिस्ट में थी. पांच उपन्यास लिख चुके जॉर्ज बनार्ड शॉं ने असफ़लता से निराश होकर नाटक लिखे और अंततः सफ़लता का स्वाद चखा. इसी तरह ग्राहम बेल, बॉस्टन यूनिवर्सिटी मे बधिरों की भाषा सिखाते थे. सिखाते-सिखाते उन्हें एक लडकी से प्रेम हो गया. वह कानों से बहरी थी. वे कोई ऎसा यन्त्र बनाना चाहते थे जिसकी मदद से उनकी प्रेमिका सुन सके. और उन्होने टेलीफ़ोन का अविष्कार कर डाला. कभी लकडहारे बने तो कभी सर्वेयर ,तो कभी छोटे से गांव के पोस्ट्मास्टर रहे अब्राहम लिंकन अमेरिका के सबसे लोकप्रिय राष्ट्रपति हुए.

बिडला समूह के संस्थापक श्री घनश्याम दास बिडला की शिक्षा महज पांचवी तक ही हुई थी. लेकिन उनके मन में एक सफ़ल उद्धोगपति बनने का जज्बा था. उन दिनों अंग्रेज जूट का व्यापार करते थे .उन्होंने बिडलाजी को ऋण देने से मना कर दिया. मशीने भी दूगनी कीमत मे खरीदनी पडी ,लेकिन उन्होंने हार नहीं मानी और संघर्ष्रों से लडते हुए मंजिल की ओर बढते रहे. १९८३ में अपनी मृत्यु के समय बिडला समूह की २०० कंपनियों और २,५०० करोड की संपत्ति के मालिक थे.

माननीय अब्दुल कलाम आजाद को कौन नही जानता. गरीब मछुआरे के बेटे अब्दुल कलाम ने बचपन में अखबार बेचे. आर्थिक तंगी के बीच उनकी पढाई हुई. अपनी कल्पनाशीलता के कारण ही उन्होंने भारत की प्रोद्दोगिकी के क्षेत्र में अनेक सफ़लताएं हासिल की और वे भारत के राष्ट्रपति भी bbबने. आज वे मिसाइल पुरुष के नाम से जाने जाते है. धीरुभाई अंबानी, लक्षमी मित्तल, नारायणमूर्ति सहित कई नामी गिरामी व्यक्ति हुए जिन्होने अपनी सफ़लता के झंडे गाडे. प्रमुखता से यहाँ अमिताभ बच्चन को याद करना प्रासंगिक होगा. सदी के महानायक के रुप मे विख्यात अमितजी ने भी कम पापड नहीं बेले. अभिनेता बने अमितजी ने अपनी कंपनी ए.बी.सी.एल का गठन किया और करोडों के कर्जदार हो गये. लेकिन उन्होंने कभी हौसला नहीं हारा और आज प्रसिद्धि की बुलंदियों पर खडे हुए है. अपने जमाने के प्रसिद्ध कवि श्री हरवंशराय बच्चन जी से उन्होंने विरासत में संघ्र्ष करने और कभी न हार मानने का जो गुरुमंत्र दिया था, उसके बल पर चलते हुए उन्होंने यह कमाल कर दिखाया है. श्री हरिवंशराय बच्चन की एक कविता यहाँ उल्लेखित है जो हारे हुए मन को संयम तथा कडे परिश्रम का पाठ पढाती है.. वे लिखते हैं

हिम्मत करने वालों की हार नहीं होती//लहरों से डरकर नैय्या पार नहीं होती//नन्हीं चींटी जब दाना लेकर चलती है//चढती दीवारों पर सौ बार फ़िसलती है//मन का विश्वास रगो में साहस भरता है//चढकर गिरना, गिरकर चढना न अखरता है//आखिर उसकी मेहनत बेकार नहीं होती// कोशिश करने वालों की हार नहीं होती//डुबकियां सिंधु में गोताखोर लगाता है// जा-जाकर खाली हाथ लौट आता है//मिलते न सहज ही मोती पानी में//बढता दूना उत्साह इसी हैरानी में//असफ़लता एक चुनौती है,स्वीकार करो//क्या कमी रह गयी, देखो और सुधार करो// जब तक न सफ़ल हो, नींद चैन की त्यागो तुम//संघष करो, मैदान छौडकर मत भागो तुम// कुछ किये बिना ही जय-जयकार नहीं होती// हिम्मत करने वालों की हार नहीं होती// बच्चों...इस लेख में कुछ ऎसे लोगों की चर्चा की गई है जिन्होनें कडी मेहनत के बल पर सफ़लताऎं अर्जित ही थी .हमें भी इन्हीं राहों पर चलना होगा. याद रखें..जीवन संघ्र्षमय है. कभी सफ़लता तो कभी असफ़लता हमें मिलती है. सफ़ल हो जाओ तो अभिमान मत करो ,बल्कि अपने साथी को भी आगे बढने के लिए उत्प्रेरित करो. असफ़ल हो जाओ तो पीछॆ मुड कर देखो और खोजो कि वे क्या कारण थे कि मैं असफ़ल क्यों हुआ. गलतियों में सुधार करो और उसी गति और उत्साह से पथ-निर्माण में लग जाओ. तुम देखोगे कि सफ़लता तुम्हारा कभी से इंतजार कर रही थी. दुनियां में आज जितनी विलासिता की सामग्री पडी मिलती है, यह जान लो कि कहीं ये तुम्हारे पांव की बेडियां न बन जाये. फ़िसलन बहुत है. होशियारी से कदम बढाये जाने की जरुरत आज ज्यादा है .कोर्स की किताबे तुम्हें परीक्षा में पास जरुर करवा देगीं, लेकिन केवल चार अक्षर पढ लेने मात्र से जीवन नहीं चलता .जहाँ से भी हमें अच्छी-अच्छी बातें पढने को मिले,उन्हें भी आत्मसात करते चलो. कोई भी ऎसा काम मत करो, जिससे तुम्हारे अभिभावकों का सर शर्म से झुक जाए. और अंत में एक जरुरी बात. और वह यह कि खुद के लिए तो हर कोई जीता है, लेकिन औरों के लिए भी जीना सीखॊ.

प्रथम अन्तरिक्ष यात्री यूरी गागरिन

विश्व का प्रथम अन्तरिक्ष यात्री रूस का यूरी गागरिन नामक व्यक्ति था. 12 अप्रैल सन 1961 को गागरिन ने "वोस्तोक-1" नामक राकेट में सवार होकर उडान भरी. उसने लगभग 108 मिनट में पृथ्वी की एक परिक्रमा की. इसके बाद 5 मई 1961 को अमेरिका निवासी शेपर्ड नामक व्यक्ति ने अन्तरिक्ष पर पहुँचने में सफ़लता प्राप्त की. शेपर्ड ने जिस अन्तरिक्ष यान मे यात्रा की थी, उसका नाम फ़्रीडम-7 था. वे लगभग 15 मिनट तक अन्तरिक्ष में रहे.

अन्तरिक्ष जगत में सबसे महत्वपूर्ण सफ़लता 21 जुलाई 1969 को मिली, जब अमेरिका के नील आर्मस्ट्रांग और एडविन अल्ड्रिन नामक व्यक्ति चाँद पर पहुँचे. इस यात्रा के लिए इन यात्रियों को विशेष रुप से प्रशिक्षित किया गया. उनके लिए खास तरह के कपडॆ तैयार करवाए गए. साँस लेने के लिए उन्हें गैस की थैलियां दी गई.

16 जुलाई 1969 को अमेरिका के फ़्लोरिडा नामक नगर से शाम को ठीक 7 बजकर 2 मिनट पर अपोलो-11 नामक यान ने तीन साहसी यात्रियों नील ए. आर्मस्ट्रांग, एडविन ई.एल्ड्रिन और माइकेल कौलिन्स को लेकर उडान भरी. यह यान बहुत द्रुतगामी था. चार दिन लगातार उडान भरने के बाद आर्मस्ट्रांग की यह आवाज" हमारा यान चाँद पर उतर गया है" आते ही सम्पूर्ण विश्व में इस समाचार से आश्चर्य और प्रसन्नता की लहर दौड गई.

इसके आगे का समाचार जानने के लिए दुनिया का हर व्यक्ति उत्सुक हो गया. 21 जुलाई को प्रातः 8 बजकर 26 मिनट पार यान का दरवाजा खोलकर नील आर्मस्ट्रांग ने चन्द्रमा की सतह पर पाँव रखा. तत्पश्चात उसके 20 मिनट बाद दूसरा साथी एडविन यान से बाहर आया. तीसरा साथी माइकल यान के आदेश-कक्ष में बैठकर चन्द्रमा की परिक्रमा करता रहा.

इन दोनों यात्रियों को चन्द्रमा के धरातल पर चलने-फ़िरने में काफ़ी कठिनाई हुई. सभी प्रतिकूल परिस्थितियों का दृढतापूर्वक मुकाबला करते हुए उन्होंने वहाँ पर दो घंटॆ बिताए. इन यात्रियों ने चाँद की सतह पर अमेरिका और राष्ट्रसंघ के देशों के झंडॆ गाडॆ. आप लोगों को जानकर यह हर्ष होगा कि उनमें भारत का तिरंगा झंडा भी था. उन्होंने वहाँ अमेरिका के राष्ट्रपति के संदेश की स्टील की तख्ती भी लगाई जो इस प्रकार थी.:

"'इस स्थान पर जुलाई 1969 ई. में पृथ्वी ग्रह के मनुष्यों ने पहले-पहल अपना पैर रखा. हम समस्त मानव जाति के लिए शांति चाहते हैं"

इन यात्रियों ने वहाँ के अनेक चित्र लिए. चन्द्रमा के धरातल से रेत, पत्थर और मिट्टी के नमूने अपने साथ लाए.

अन्तरिक्ष की इस यात्रा क्रम में भारत को पहली सफ़लता 3 अप्रैल 1984 को मिली, जब स्क्वाड्रन लीडर राकेश शर्मा, दो रूसी अन्तरिक्ष यात्रियों, कर्नल यूरी मालिशेव और स्ट्रेकोलाव के साथ अन्तरिक्ष पहुँचे. यह यात्रा उन्होंने " सोयूज टी 11 "नामक अन्तरिक्ष यान से पूरी की. यह दिन भारतीय इतिहास में स्वर्णाक्षरों में अंकित करने योग्य है.

स्क्वाड्रन लीडर राकेश शर्माजी.

तत्कालीन प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधीजी ने जब राकेश शर्मा से पूछा कि ऊपर से अन्तरिक्ष से भारत कैसा दिखता है. तो उन्होंने गर्व से अपना सीना चौडा करते हुए कहा:-" सारे जहाँ से अच्छा हिन्दुस्थान हमारा". भारत सरकार ने उन्हें "अशोक चक्र" से सम्मानित किया था. चन्द्रलोक पर मानव की यात्रा बीसवीं शताब्दी में विज्ञान का सबसे बडा चमत्कार है.